– झू – – लत सखी –, नवरं – ग डो – – ल – (डोल)

(२) उडत बं – द न न वअ, बी – र बहु कुम कुमा–, खे – लत बसं–
तबन, ला – लगिरिवरधरन (वसंत)

(३) आ – योरितुराजसा – जि, पंचमी – बसंत आ – ज, मौ – रे
द्रूमअतिअनूप, अं – व र हे फू – ली – – (वसंत)

अ. भ. सं. भा. २ पृष्ठ ४२९ हमारे श्री विठ्ठलनाथधनी अनुसार

(१) अ – द्भूत शो – भा – वृं – दा – व न की –, दे – खहु नं
– दकु मा – – – – – – र – (बसंत)

(२) ए – क बो – ल बो – लो – नंदनं–दन, तो – खे – लौं – तुमसं
– – – – – ग – (बसंत)

(३) ला – लगुपा – लगुला – लहमा – री –, आँखियन में – जिनडा
– रो – जू – – – (बसंत)

अ. भ. सं. भा. २ पृष्ठ ४२७ जशोदा नहि बरजे अनुसार

(१) खे – – – लत – ब – सं – – त – व – ल्ल – – – भ – कु
– मा – – र – (बसंत)

(२) दे – खो – वृं – – दा – – – वन – श्री – – – कम – ल
– नै – – न – (बसंत)

अ. भ. सं. भा. २ पृष्ठ ४२८ खेलत खेलत पोढि अनुसार

(१) चलि – रा – – – धे – – तो – हि – स्या – – म – बु –
ला – – वे – – – (बसंत)

ललित बसंत

अ. भ. सं. भा. २ पृष्ठ ४१४ श्री वल्लभप्रभु करुना सागर अनुसार

(१) सांचीकहो – मनमोहन मों – सों तो, खे – लो तुम संगहो – – री
– – – (वसंत)

परिशिष्ट–१

(अ) अष्टछापीय कीर्तन गान और साहित्य

भारतीय संस्कृति में संगीतकला की ध्वजा शिखर तक पहुँचानेमें शब्द याने साहित्यका स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है। यहाँ इस संदर्भ में १६ वीं शताब्दी से लेकर कुछ विचार प्रगट करना चाहता हूं। तत्पूर्वके इतिहास की चर्चा प्रथम भाग में कर चूका हूं। हमारे उ. भा. संगीत के उगम का समय राजा मानसिंह का माना गया है। इस शताब्दी में प्रबन्धादि द्रुपदगान का प्रचार था, जिनमें अकबरशाह के समय को द्रुपदगान का सुवर्णयुग माना जाता है।

कई लोग प्रबन्धगान के द्रुपदअंग में दो प्रकार मानते हैं। प्रथम प्रकार में स्थायी और अन्तरा से ही तुक पूर्ण करते हैं और दूसरे प्रकार में संचारी तथा आभोग को वैकल्पिक मानते हैं, किन्तु हमारी परम्परा के मत से स्थायी–अन्तरा-संचारी और आभोग सहित तुकबन्दी सिवाय के द्रुपद अपूर्ण हैं। प्रथम प्रकार के अपूर्ण द्रुपदगान का प्राचीन मानना सुसंगत नहीं है। आलाप के सम्बन्ध में "ॐ अनन्तनारायण नरहरिः" शब्दों द्वारा किये जाने वाले आलापको कई लोग प्राचीनतम मानते हैं जो हमारे मन्दिरों में "गिरिराज धरणधीर ललन बर" इत्यादि भगवन्नामांकित शब्दों द्वारा आलाप किया जाता है। अधिक चर्चा पूर्वग्रन्थ में की गई है।

अकबर के समय के पूर्व हमारे पुष्टिमार्गीय संगीताचार्य वाग्गेयकार भी थे जिनकी स्थापना श्रीविट्ठलनाथजी (श्रीगुसांईजी) ने सं. १६०६ में "अष्टछापमंडल" नाम से की थी। इस समय द्रुपदगानकी चार प्रकार की बानियां प्रचारों में मानी जाती थीं। इनमें श्रीकुम्भनदासजी की बानी 'गोवर्धनधारी' थी, जिसको आज 'गोवरहारी' से पहचानते हैं। इस विषय में "अ. भ. संगीत," भा. २ परिशिष्ट में (पृष्ठ ४३८) कह चूका हूं। यहाँ पुष्टिमार्गीय संगीत के गाये

जाने वाले पदों में संगीत के साथ साथ साहित्य का सम्बन्ध मालम होता है। इस विषय पर कुछ कहूंगा।

द्रुपदगान का आरम्भ गाथा छन्द–प्रबन्ध–गान के पश्चात् ध्रुवपद या पदशैली का प्रादुर्भाव हुआ है। अनेक विद्वान लोग व्रजभाषा को हिन्दीभाषाकी जनेता मानते हैं। पुष्टिमार्गीय कीर्तनों के द्रुपदगान–शैलीमें काव्य के शब्द, राग, रचना की सूरावली, ताल और आवर्तन तथा मात्रा इत्यादि को आवश्यक माने जाते हैं। गानशैली में काव्य की रचनाओं का आधार मुख्यतः मात्रा तथा ह्रस्व, दीर्घ के आधार पर तालों का वर्गीकरण किया जाता है जिसका उल्लेख हमने पूर्वप्रकाशित ग्रन्थ भा. २ के परिशिष्ट ३ में (पृष्ठ ४४०) उदाहरण-सहित किया है। किन्तु मात्रा के साथ ह्रस्व, दीर्घ का सम्बन्ध जोडना तथा इस आधार पर कितने आवर्तन बनते हैं यह बात निम्न उदाहरण से सहज में समझी जायगी।

प्रथम स्वर और व्यंजनको लक्ष में लेना चाहिये। स्वरो में अ इ उ ऋ को लघु और आ, ई ऊ ए ओ औ अं को गुरु समझ कर लघु की एक मात्रा और गुरु की दो मात्रा को हिसाब लगा कर शब्दों का वितरण करनेसे काव्य की प्रथम पंक्ति या किसी भी पंक्ति के आवर्तन समझमें आ सकते हैं।

जैसे

प्रा–त स | मे–न व | कुं–ज बा | –र व्हे–

५ गुरु और ६ लघु मिलाकर कुल १६ मात्राओं का एक आवर्तन होता है। इस प्रकार अधिकतर प्रत्येक आवर्तन हो सकता है (देखिये इस ग्रन्थ के पृष्ठ १२ पर)।

साहित्यकी दृष्टि से उपर्युक्त नियम की शक्यता विशेषतः ८ या १६ मात्राओं की त्रिताल में दिखाई देती है। अन्य तालों में भी अधिक अंश शक्य वहाँ तक लघु–गुरु का ठीक स्थान होते हुए भी शब्दावलि की सुसंगतता और राग के स्वरोंका पूर्वापर सम्बन्ध तथा तालों के विभाग (खण्ड) के आधार पर

कहीं कहीं लघु–गुरु का स्थान बदलता रहता है। जो कि स्थायी, अन्तरा, संचारी, आभोग में अन्तिम अक्षर के लिए गुरु को अन्तिम खण्ड की मर्यादा अनुसार २, ३, ४ इत्यादि मात्राओं तक बढाया जा सकता है। द्रुपदशैलीके चौताल, चर्चरी, सूलतालमें गाये जाने बाले पदों के लिए भा. २ के परिशिष्ट ३ में उदाहरणसहित लघु–गुरु का विवेचन किया गया है। किन्तु धमारकी शैली द्रुपदगानसे कुछ भिन्न होने के कारण लघु–गुरु का नियम शब्दों की तथा तालों के खण्ड की जोड–तोडके आधार पर गायक लोग योग्य स्थान पर नियत करते हैं।

अष्टछाप–परम्परा के पदों में ६, ७, ८, १०, १२, १४,१६ तथा १८ मात्राओं की तालों में गाये–जाने वाले पदों का समावेश होता हैं। यह सभी तालों से निबद्ध पदों की गानशैली द्रुपद–अंग की ही है। प्रचार में ४, ६, ८, १२, १४, १६ मात्राओं के तालों का प्रयोग ख्याल, ठुमरी तथा सुगम संगीत इत्यादि शैलियोंमें होती है। इस मात्राओंमें गाये जाने वाले प्रकारों में जो ताल प्रचार में हैं उसकी प्राचीनता और उत्पत्ति सम्बन्ध में पूर्व ग्रन्थ, भा. १ (ताल प्रकरण) में लिख चूका हूँ, जो पखावज–अंग के ताल थे और उसके नाम भीं भिन्न थे। इस प्रकार पखावज के प्राचीन तालों के आधार पर तबलों में बजनेवाले तालों का प्रचार होने लगा और उस प्रकार ख्याल–शैली के उगमकारों नें द्रुपद–गान के प्रकारों के आधार पर अपनी रचनाएँ की हैं ऐसी मान्यता है। आजकल अधिकतर एकताल और त्रितालमें ख्यालगान का प्रचार सुप्रसिद्ध है। चौताल की पदरचना को लक्ष में रख कर एकताल के ख्यालों की रचना होने की मान्यता है। उस प्रकार १६ मात्राओं के त्रिताल की बंदिशों की ख्याल–रचना भी हमारे ८ मात्राओं के तालों में गाये जाने वाले पदोंको ध्यान में रख कर विबिध प्रकार की बंदिशों में ख्यालरचना का आरम्भ हुआ हो ऐसी मेरी मान्यता हैं। प्राचीन ८ मात्राओंके पदोंके स्थान पर १६ मात्राओंके ख्याल प्रचारमें आने लगें जो अतिबिलंम्बित, विलम्बित, मध्यलय,

द्रुत लय तथा अतिद्रुतलयमें भी आजकल सुननेमें आते हैं। हमारे यहां कीर्तनोंकी गानपद्धतिमें लयका प्रमाण पूर्वग्रन्थमें कह चूका हूं।

(ब) कीर्तन प्रणाली संबंधी कुछ विचार

संप्रदाय की कीर्तनसेवा प्रणाली के आरम्भ से श्रीजी समक्ष तथा सम्प्रदाय की मुख्य सात पीठों में एवं निधिगृह के मंदिरों में भी गतशताब्दी तक दर्शन समय कीर्तनकार खड़े रह कर कीर्तन–गान किया करते थे। अधिकतर चारों मासों के पदकीर्तन कण्ठस्थ थे तथापि अधिकतर, अपने हाथों से लिखित पोथियाँ–गुटकाओं का उपयोग भी करते थे। यह प्रथा जहाँ तक चालू रही वहाँ तक कीर्तनों के पाठ–पाठान्तर शुद्ध रूप से प्राप्त होते रहे। पश्चात् लगभग अन्तिम सौ वर्षों से छपे हुए पुस्तकों का प्रकाशन प्रचार में आया तबसे पाठ—पाठान्तर में कुछ क्षतियाँ रहने लगी। समयान्तर इस प्रकारके पुस्तकों का उपयोग निधिगृहों के कीर्तनकार भी करने लगे।

हमारे यहाँ समूहगान और व्यक्तिगत गान की प्रथा प्राचीन समय से दिखाई देती है।

व्यक्तिगतगान :–श्रीजी को जगाने से मंगला तक तथा ग्वालसमय तथा उत्थापन एवं पोढाने के समय एक ही कीर्तनकार से ऋतुअनुसार पद गाये जाते हैं। तदतिरिक्त अन्य समय समूहगान की प्रथा आज भी अधिकतर नाथद्वारा में दृष्टिगत होती है।

मर्यादासम्प्रदायके अन्य वैष्णव मन्दिरों में प्रभुकी सेवा मन्त्रोपासना से की जाती है, पुष्टि–संप्रदायमें अष्टसखादिकी बाणी द्वारा दिनभर की सेबा चलती रहती है। इस प्रकार बाणी या पद–कीर्तन की भाबना बेद–मन्त्रों के समान मानी जाती है। अतः मन्त्रों के अनुसार पदों में भी भाषा–उच्चार एवं पूर्वापर साहित्य की संगति इत्यादि में साहित्य और संगीत की दृष्टि से जरा सी भी क्षति होनी नहीं चाहिए।

हमारे प्रकाशित ग्रन्थो में दिये गये हुए कीर्तनों का पाठ यथाप्रयत्न शुद्ध किया गया है, जिनमें कांकरोलीके सौ वर्षों पूर्व के कीर्तनकारों की अपने हाथों से लिखे हुए बर्षभर के गुटका तथा अन्य लहियाओं के हाथोंके लिखे हुए कीर्तनसंग्रहों की ओर ध्यान दिया गया है।

आश्चर्य होगा कि मन्दिरों के उपयोगकी पुस्तकें भी जो प्रसिद्ध हो चूकी हैं और सर्वप्रथम ठाकुरदास सूरदास, तत्पश्चात् श्री लल्लुभाई छ. देसाई और जेठमल आसनमल ट्रस्ट (बम्बई) द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों की दो, तीन आवृतियाँ भी प्रसिद्ध हो चूकी हैं, किन्तु इनमें भी उत्तरोत्तर प्रतिलिपि ही दिखाई देती है, तो आगामी प्रकाशन में किसी निष्णात द्वारा प्राचीन पुस्तकों के आधार पर शुद्धीकरण करवा के प्रसिद्ध करेंगे तो उपकारक होगा। जैसे नित्य की बड़ी पुस्तक में सन्ध्यारतीके गौरी राग के ''कनक कुंडल कपोल मंडित गोरज छुरत सुकेश'' के बाद ''मदगज चाल चलत सुरनरमुनि लाडिले व्रजकुंवर नरेश' जिनमें 'सुरनरमुनि' पाठ सभी पुस्तकों में अर्थहीन छपा हुआ है। असल में 'सुरभिन संग' यह शुद्ध पाठ है।

(२) 'कमलनयन हरि करो कलेवा' कलेवा के इस पद में ''हरे खरबुजा जाम'' में 'जाम' के स्थान पर 'आम' चाहिये क्योंकि 'जाम' भिन्न ऋतुका फल है। और खरबुजा की ऋतु आम से संबधित है। इस प्रकार हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थों के अवलोकन से अनेक पाठन्तरों के शुद्ध रूप प्राप्त हो सकते हैं। दुःख की बात है कि बड़ी बड़ी पुस्तकों के प्रकाशनों में अधिकाधिक खर्च होता है, किन्तु संशोधनकार्य में भी उचित ध्यान देना चाहिये।

फलतः कुछ बिन-अनुभवी कीर्तन गाने वाले कों भी ''छाक खाय-खाय धाय-धाय ''इस पद की अन्तिम पंक्तिमें 'घर-घर' के स्थान पर 'घर-घर' तथा '' जै जै श्रीवल्लभप्रभु पद में'' चलत क्यों कुपाथे'' के स्थान पर ''कृपा ते'' शब्द का प्रयोग करते हुए भी सुनने में आते हैं। इस प्रकार की अनेक अशुद्धियाँ दृष्टिगत होती हैं।

कीर्तनप्रणाली एवं पाठान्तर इत्यादि से अल्प परिचित संपादक द्वारा प्रकाशित होने से भाषा दोष, लिपिदोष, अशुद्ध पाठान्तर इत्यादिके कारण समाज में भिन्न प्रकारोंका प्रचार होता रहता है । इतना नहीं आजकल कीं आधुनिक रचनाओंके घोलपद भी मन्दिरो में श्रीजी समक्ष गाने की प्रथा का आरम्भ हो रहा है । तथा कुछ वैष्णवों की ओर से इस प्रकार की रचनाओं की पुस्तिकाएँ भी, अधिकतर गुजरात में प्रकाशित होती रहती हैं ।

पुष्टिमार्गीय कीर्तनसाहित्य और संगीत को समृद्ध बनानेमें श्रीवल्लभाचार्यजी के तथा श्रीमद्‌विठ्ठलेश्वरके सेवको मे क्रमशः ८४–२५२ वैष्णवों में जो कबि एवं संगीतज्ञ थे इन्होंने उस समय विविध प्रकारों की लीलाएँ भावमय वर्णन—संगीतके माध्यम से प्रगट की थी जिनकी नामावली निम्न प्रकार प्राप्त होती है ।

नादकी सर्वोपरिता

न नादेन विना गीतं न नादेन विना स्वर : ।
न नादेन बिना नृत्यं तस्मान्नादात्मकं जगत् ॥

गीत, स्वर एवं नृत्य नादके बिना नहीं होते—क्योंकि जगत् नादात्मक है ।

नादोपासनया देवा ब्रह्मविष्णु महेश्वराः ।
भवन्त्युपासिता नूनं यस्मादेते तदात्मकाः ॥

अर्थात् :

नाद की उपासना करने से ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की उपासना अषने आप हो नी है । क्योंकि ये देव नाद से भिन्न नहीं हैं ।

कवि एवं कीर्तनकार

श्रीमद् वल्लभाचार्यजी— के सेवक	वार्त्ता नं.
(१) श्री कुम्भनदासजी	
(२) श्री सूरदासजी	
(३) श्री कृष्णदासजी	
(४) श्री परमानन्ददासजी	
(५) श्री पद्मनाभदास	४
(६) श्री रघुनाथदास	४/३
(७) श्री पुरुषोत्तमदास	६
(८) श्री गोपालदास	६/२
(९) श्री गदाधरदास	८
(१०) श्री प्रभुदास भाट	२१
(११) श्री जगतानन्द	४०
(१२) श्री कृष्णादासी	४५
(१३) श्री रामदास	
(१४) श्री विष्णुदास	५०
(१५) श्री भगवानदास सांचोरा	५३
(१६) श्री पुरुषोत्तमदास लघु	६५
(१७) श्री कविराज भाट	६६
(१८) श्री गोपालदास	६७
(१९) श्री गोपालदास क्षत्री	६९

श्री विट्ठलनाथजी के सेवक	वार्त्ता नं.
(१) श्री गोविन्दस्वामी	
(२) श्री छीतस्वामी	
(३) श्री चतुर्भुजदासजी	
(४) श्रीनन्ददासजी	
(५) श्री मुरारिदास	
(६) श्री अलीखान	१७
(७) श्री कटहरिया	२३५
(८) श्री गोपालदास	२८
(९) श्री माणेकचन्द	२९
(१०) श्री गंगाबाई क्षत्राणी	६५
(११) श्री तानसेन	११३
(१२) श्री आसकरन	१२३
(१३) श्री ऋषीकेश	१३७
(१४) श्री ब्रह्मदास	२३६
(१५) श्री सगुणदास	२४२
(१६) श्री धोंधी	२४३
(१७) श्री रसखान	२४५
(१८) श्री यादवेन्द्रदास	२४६
(१९) श्री चतुरबिहारी	२४८
(२०) श्री माधोदास (माधवदास)	२५१
(२१) श्री रामरायहित	२५२

तदुपरांत तत्कालिन:अन्य वैष्णब सम्प्रदायोंके जिनको अपने इष्ट से सानुभावता हो चूकी थी ऐसे महानुभावों के एवं श्रीगुसांईजी के समयसे श्रीहरिरायजीके समय तक के सम्प्रदायिक कुछ संगीत, गोस्वामी तथा वैष्णव महानुभावोंने भी सम्प्रदायका संगीत और पदसाहित्य को समृद्ध वनाने में योगदान दिया है जिनके प्राप्त नाम अष्टछापीय भक्तिसंगीत के प्रथम भाग में पृष्ठ १२३ पर प्रकाशित किये गये हैं।

परिशिष्ट–२

हवेली संगीतके उत्साहियोंको आवश्यक जानकारी

अष्टछाप परम्परागत हवेलीसंगीत सीखनेकी उत्कंठा बाले संख्याबन्ध वैष्णवों की माँग है, किन्तु आज सिखाने वाले अनुभवी कीर्तनकारों के अभाव से वे असन्तृष्ट हो कर निराश हो जाते हैं। इस परिस्थिति में इस विषय पर में मार्गदर्शन प्रगट करना उचित समझता हूँ।

पूर्वग्रन्थों में कह चूका हूं कि श्री हरिरायजी तक अष्टछापीय परम्परा अविच्छिन्न रही। पश्चात् विक्रम की गतशताब्दी तक भी इस परम्परा की लकीर दृष्टिगोचर हाती रही। इस लकीर के आधार पर ही आज हमने स्बरांकन एवं विवरणसहित तीन भागों में प्रकाशन किया है। जो कि कीर्तन सीखने की पूर्व प्राचीन परम्परा कर्णोपकर्ण गुरुमुख से ही दृष्टिगोचर होती थी। जिस समय सात पीठों में एवं अन्य बडे मन्दिरों में व्यवसायी वैष्णवगण की मंडली समय समय पर हंमेशां उपस्थित रहती थी। इस प्रकार कुछ बर्षों के अभ्यास से व्यबसायी और अव्यवसायी कीर्तनगायक तैयार होते रहते थे।

आज यदि कीर्तनकी परम्परा चालू रखनी है तो हमारे सामने तीन प्रकार नजर आते हैं।

(१) बडे शहरोके मन्दिरों में जहाँ कीर्तनगायक–वादक नियुक्त होते हैं बहाँ प्रत्येक सप्ताह में दो या तीन दिनों का शिक्षाक्रम नियत किया जाय।

आजकल मन्दिरों में नियुक्त किये गये कीर्तनगायक–वादक की संख्या गत शताब्दी की अपेक्षा न्यूनतर होती रही है ।

(२) बडे नगरों में वर्ष में दो बार शिविरशिक्षा योजना भी की जा सकती है । यदि आज के कीर्तनकारों को यह कार्य सौंपा जाय तो भी प्रत्येक की गानशैली में कुछ–न–कुछ भिन्नता रहेगी । इस भिन्नता के कारण भविष्य में परम्परागत शैली के स्थान पर परिवर्तित शैलीके साथ कीर्तन प्रणालि बनेंगी ।

यदि सप्ताह–दो–सप्ताहों की योजना का आयोजन किया जाय तो सेधा की प्रणाली के सेंकड़ो पदों का ज्ञान संख्याबन्ध स्त्री–पुरुषों के समुह के साथ कविता की तरह गवाने से ताल, लय, स्वर और रागों की सुरावट एवं बन्दिश की तराह इत्यादि में से केवल परिचयात्मक ज्ञान हो सकता हैं । क्योंकि स्त्री–पुरुषोंके आवाज में लगभग चार सूरोंका अर्थात् १३ श्रुतियों का अन्तर होता है अतः इस प्रकार की अल्पकालिन शिक्षा से केवल प्रचार से अधिक लाभ होना अशक्य है । वास्तव में व्यवसायी एवं अव्यवसायी कीर्तन–संगीत के जिज्ञासुओं का शिक्षास्थान हमारे मंन्दिर–हैं जहाँ कायमी योजना की सम्भावना रहती है ।

(३) आधुनिक युग को पहचान कर संगीतोद्धारक पं. भातखंडेजी एवं पं. विष्णु दिगम्बरजी नें शिक्षा की जो सरल पद्धति का स्वरलिपि द्वारा आयोजन किया हैं जो भारतवर्षकी संगीतविद्यापीठों तथा विद्यालियो में स्वरलिपिबद्ध शिक्षा दी जाती है वह सुप्रसिद्ध है ।

शास्त्रविवरणसहित स्वरलिपिबद्ध पाठ्यपुस्तकों द्वारा शिक्षापद्धतिं अधिक सरल, सुलभ और उत्तम होती है क्योंकि इस युग में समयाभाव के कारण प्रत्येक कला और विद्याकी प्राप्ति के लिए भारतवर्ष की सभी विद्यापीठों ने यही मार्ग अपनाया है ।

"स्वरलिपिसे गायकी का पूरा ज्ञान प्राप्त होना मुश्किल है" क्योंकि

स्वरलिपि साधन है, जो साध्य करने की सीड़ी है, फिर भी इस पद्धति के अभ्यास द्वारा स्वरज्ञान तालज्ञान और रागज्ञानके उपरांत बन्दिशों की विविध जानकारी के साथ काव्यरचना में आवर्तन, खण्ड, लघु–गुरु, शब्दों की जोड–तोड सहित कलातत्त्व के ज्ञान की प्राप्ति कीर्तनसंगीत की परम्परा साध्य करनेका उत्तम साधन मानता हूँ ।

कीर्तन–संगीत की प्राचीन परम्परा में जो समूहगान की प्रथा थी जो आज भी कुछ कीर्तनमण्डलियों में यह प्रथा दिखाई देती हैं, किन्तु इनमे एक ही प्रकारके शब्द और स्वररचना का सम्पूर्ण अभाव नजर आता है । यदि आज स्वरलिपि–पद्धति द्वारा अभ्यास किया जाय तो स्वर, राग, ताल, खण्ड, शब्द, आवर्तन इत्यादि के साथ पचासों व्यक्तियाँ होते हुए भी एक ही रूपमें, एक ढंगका गान हो सकता है । पश्चात् संगीतपद्धतिके गायन और बादम में स्वरलिपि के उपयोग से सेंकडों की संख्या होते हुए भी समान स्वरूप बनता है, जो हम बॅन्ड के वादन में देख सकते हैं ।

आजकल जो कुछ कीर्तनकार हमारे यहाँ उपस्थित हैं इनमें अधिकांश को स्वरलिपि का ज्ञान न होनेके कारण इस पद्धति से सीखने के लिए उत्सुक वैष्णवगण किसी भी संगीतशिक्षक जिसको स्वरलिपि का अच्छा ज्ञान हो उसीसे शिक्षा प्राप्त कर सकता है ।

इस प्रकार आधुनिक समय को लक्ष में ले कर परम्परागत कीर्तनों की शिक्षा का किसी भी प्रकार का आयोजन करना हो तो तत्पूर्व प्रथम शास्त्रीय संगीत का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है । ठुमरी, गज़ल, कव्वाली, भजन, सिनेमा–संगीत एवं लोकसंगीतके प्रसिद्ध कलाकारों को भी शास्त्रीय संगीत का शिक्षण लेना आवश्यक होता है । ध्यान रहे कि अष्टछापीय प्राचीन संगीत सुगम या लोकसंगीत नहीं हैं । इस प्रकार की परम्पर का यदि प्रचार करना है तो स्वर, ताल, राग तथा ध्रुपदगान के अनुरूप पर्याप्त शास्त्रीयज्ञान का भी ज्ञान प्राप्त किये बिना केवल कर्णोपकर्ण या समूह–शिबिर–शिक्षा से कोई इच्छित

परिणाम न होगा। द्रुपद–अंग की गायकी मृदंगके साथ ही गायी जाती है। मृदंग की गंभीर ध्वनि तथा द्रुपदकलाकारों की गंभीर आवाज एक दूसरे की पूरक जैसी दिखाई देती हैं। इसी कारण से द्रुपदघराने की परम्परा में अनेक पुरुष कलाकार ही प्रसिद्ध हो चुके हैं।

इस प्रकार स्त्रियों की आवाज़ का सम्बन्ध चंचल प्रकृति के साथ ठुमरी, गज़ल, कव्वालीकी गायकी में अत्यन्त सुसंगत होता है। अतः ठुमरी और गज़ल कव्वालो के घरानों की परम्परा भी मौजूद थी। हमारे मन्दिरोंमें प्राचीन समय से श्रीजी की कीर्तन की सेवा में पुरुष कीर्तनकारों की ही नियुक्ति की मर्यादा आज तक चालू रही है। छोटे–बडे मन्दिर ही हमारे शिक्षागृह जैसे दिखाई देते थे क्योंकि संगीत में प्रथम सुनना आवश्यक है। प्रत्येक समय के दर्शन में अनुकूलता अनुसार दर्शनार्थि वैष्णव जो आया करते थे इनमें से कुछ भावुक वैष्णवगण कीर्तन सुननेके लिए कीर्तनगान बन्ध होने तक कीर्तनकार से सुना करते थे। इस प्रकार 'कान तैयार होनेके' वाद कीर्तनकार अपने पास विठा कर झिलनियाओं को कीर्तनगाने की सम्मति देते थे। इस प्रकार के अभ्याससे कुछ वर्षों में स्वतंत्र रूप से कीर्तनगान की शक्ति प्राप्त हो जाती थी। उपरांत ऋतु–ऋतुके और समय–समय के कीर्तन भी कंठस्थ होते रहेते थे।

परिशिष्ट–३

(अ) ढाढ़ी लीला

पुष्टि सम्प्रदाय की कीर्तन प्रणाली में ढाढ़ी के पद भी गाये जाते हैं। सूरदास, परमानंददास, नंददास, चतुर्भुजदासादि अष्ट छाप के महानुभावी गायकोंने अपनी रचनाओं में ढाढ़ी–ढाढ़िन के पद गाये हुए प्राप्त होते हैं। जन्माष्टमी से राधाष्टमी तक ये पद गाये जाने की मर्यादा है। गोकुल के राजा नंदबाबा के यहाँ वृद्धा वस्था में पुत्र-जन्म की बधाई सुनकर उनकी वंश परंपरा के मागध, बंदीजन, ढाढ़ी आदि याचक गण श्री कृष्ण-जन्म सुनकर अपनी मनः कामनानुसार बधाई लेने के लिए हर्षोल्लास सहित आते हैं। इन याचकों में से हम 'ढाढ़ी' के संबंध में कुछ विचार करेंगे।

जिस प्रकार भाट-चारण आदि जातियों के लोग अपने यजमान के वहाँ पुत्र-जन्म या जन्मदिन जैसे बधाई के शुभ अवसरों पर उनके वहाँ जाकर यजमान के पूर्वजोंकी वंशावली कहते थे और कबित्त, छंद, छप्पय द्वारा उनका कीर्ति–गान करते थे। यह रिवाज कुछ अंशों में आज भी दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार हिन्दु जाति के ढाढ़ी उस समय अपने यजमान की वंशावली के कीर्ति–गान के उपरान्त नाच–गान सहित मुजरा करते हुए बधाई की याचना करते थे। अष्ट छाप के महानुभावोंने इसी ढाढ़ी प्रथा को अपने पद–गान द्वारा बड़े ही भावात्मक और सुंदर ढंग से पुष्टि मार्गीय कीर्तन परंपरा में समाहित कर लिया है। सम्प्रदाय की निश्चित की हुई कीर्तन प्रणालिका अनुसार आज भी ढाढी के ये पद गाये जाते हैं। यही नहीं कुछ बड़े मन्दिरों में तो वैष्णवों तथा कीर्तनकारों में से कुछ जानकार लोग ढाढ़ी तथा ढाढ़िन की वेशभूषा में सज्ज होकर नृत्य करते हुए स्वयं सेवा के उत्थापन के दर्शन के बाद मन्दिर के चौक में उपस्थित होते हैं और भोग समय, संध्यार्ति समय एवं शयन के दर्शन पर्यन्त नाच–गान करते रहते हैं। बाद में मन्दिर के मुखियाजी पान

का बीड़ा तथा महा प्रसाद देकर तथा उपरेना (उपवस्त्र) ओढ़ाकर उन्हें बिदाई देते हैं। इसी प्रणाली को ढाढ़ी–लीला कहते हैं।

इस ढाढ़ी लीला का आयोजन मन्दिरों में प्रायः राधाष्टमी (भाद्र शुक्ला ८) के दिन किया जाता है तो कहीं–कहीं शुक्ल पंचमी को भी किया जाता है। ढाढ़ी–लीला की प्रथा का प्रारंभ श्रीमद् हरिरायजी के समय में होना संभवित है।

ढाढ़ी–लीला में प्रारंभ में ढाढ़ी के रूप में एक ही व्यक्ति के उपस्थित होने की प्रथा थी। काँकरोली तथा अन्य कीर्तन मंडल के केवल मुखिया ही नाच का कुछ भाव बताकर ढाढ़ी के चार या पाँच पदों का गान किया करते हैं। बाद में श्रीमद् हरिरायजी की उत्तरावस्था के समय ढाढ़ी के साथ ढाढ़िन भी उपस्थित होने लगी। किन्तु वर्तमान समय में वैष्णव लोगों के घर ढाढ़ी–लीला का जो मनोरथ होता है उसमें दो ढाढ़िनियों का होना भी आश्चर्यजनक नहीं है।

हमारे मत में एक, दो या अधिक व्यक्तियों द्वारा ढाढ़ी–लीला भले ही की जाय किन्तु उस में ढाढ़ी–लीला का मुख्य अंग–ढाढ़ी का गीत और ढाढ़िन का नृत्य–होना चाहिए। इस में पद्धति अनुसार राग, ताल, सुर में, गान और ढाढ़िन का नृत्य भावात्मक एवं रोचक होना आवश्यक है क्योंकि ढाढ़ी–लीला का नृत्य प्रकार 'लास्य नृत्य' के अन्तर्गत माना जाता है।

श्रीमद् हरिरायजीके पश्चात् तृतीय पीठ के गोस्वामी श्री गिरिधरलालजी महाराज 'भवाईवाले' के समय में ढाढ़ी-लीला का प्रचार क्रमशः बढ़ने लगा। मंदिरों के उपरान्त वैष्णवों के यहाँ भी प्रसंगानुसार ढाढ़ी–लीला का आयोजन किया जाता था जिसमें केवल वैष्णवी दीक्षा प्राप्त व्यावसायिक एवं अव्यावसायिक वैष्णव ही ढाढ़ी–ढाढ़िन के स्वांग में उपस्थित हो सकते थे। इस प्रकारकी मर्यादा आज भी चालू है।

यजमानवृत्ति से संबंधित ढाढ़ियों में अधिकतर हिन्दु ढाढ़ी विशेष रूपसे पाये जाते थे । किन्तु अब वर्तमान समय में हिन्दु ढाढ़ी की अपेक्षा मुसलमान ढाढ़ी—जिनमें मीर, मीरासी, कव्वाल आदि का समावेश होता है—परंपरा के लोग ही अधिक प्रचार में हैं । इसी प्रकार वर्तमान समय में कथ्थक, बंदीजन, चारण, भाट आदि जाति के लोग हिन्दु ढाढ़ी की प्राचीन परंपरा की याद दिलाते हैं ।

ढाढ़ी—लीला में गाये जानेवाले अष्टछापीय कीर्तन परंपरा के पदों में से कुछ पदों[1] की प्रथम पंक्तियाँ नमूने के तौर पर यहाँ दी गयी हैं :

१. श्री वल्लभ पद बंदि कें, कहूं सुजस इक सार. पुत्र भयौ श्री नंद कें, बड़ी बेस ततकार ॥[2]
२. हमारो नंद बड़ो जिजमान ॥
३. लाल पर वारनें कीनी हो ढाढिनि बारनें कीनी ॥
४. यदुवंशी जिजमान तिहारो ढाढ़ी ॥
५. नंद वृषभान के हम भाट ॥
६. कृष्ण जनम सुनि अपने पतिसों हँसि ढाढ़िन यों बोलीजू ॥[3]

---

१. इन पदों के रचयिता कवि क्रमशः इस प्रकार हैं : (१) श्रीमद् हरिरायजी (२) और (३) रामकृष्ण, (४) किशोरीदास, (५) व्यासदास, (६) नंददास, (७) कृष्ण, (८) चत्रभुज (९) दासगोपाल, (१०) रामराय, (११) नागरीदास.

२. श्रीमद् हरिरायजी के पद में वंशावली सहित कीर्तन-गान की भावना प्रकट की गयी है ।

३. यह पद स्वर लिपि बद्ध है । देखिये 'अष्टछापीय भक्ति संगीत' —२ खण्ड—४ पृ. सं. २७३.

७. ढाढ़िनियां मचल रही रे नंदघर लै चलरी ॥

८. हों व्रजराज की ढाढ़िनि व्रजतें आई हो ॥

९. श्री व्रजराज के हम ढाढ़ी ॥

१०. जसोदे बधाइयाँ बधाइयाँ जसोदे बधाइयाँ ॥

११. बाजे वधाइयाँ वे सैयां नंददे दरबार ॥[१]

ढाढी लीला संबंधी कवित्त, सवैया के उदाहरण :—

१. फुलि गये गोप गृह गोपिन कों भूलि गये,
हुलसी मचाइ जामें प्रेम सरसाइमें,

२. पूत सपूत जन्यौ जशोदा इतनी सुनिकें बसुधा सब दौरी, देवन को
आनंद भयो सुनि धावति गावति मंगल गौरी, नंद कछु इतनो जू दियो
न बचि बछियां छछियां न छिछौरी :

---

[१] यह पद स्वरलिपि बद्ध हैं। देखिये इसी ग्रथ में. पृ. सं. ६५.

ब–जोगीलीला (महादेवलीला)

शास्त्रकारोंने संगीत की व्याख्या में गीत, वाद्य और नृत्य इन तीनों का समावेश किया है। तदनुसार पुष्टिमार्ग की कीर्तन संगीत प्रणाली में गीत, वाद्य तथा नृत्यको विशिष्ट स्थान दिया गया है। पूर्व प्रकाशित “अष्टछापीय भक्ति संगीत–भाग १ एवं भाग–२ में इस संबंध में विस्तार पूर्वक कहा गया है।

सम्प्रदाय में गायन और वादन–कला की अपेक्षा नृत्य–कला का स्थान गौण रहा है। तथापि ढाढी–लीला तथा महादेव लीला में नृत्य–कला का स्थान भी भावात्मक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण रहता है।

इस के पूर्व ढाढ़ी लीला संबंधित नृत्य–गान पर बिचार व्यक्त किये गये हैं।

शास्त्र में नृत्य के मुख्य दो प्रकार माने गये हैं। इनमें ढाढी लीला के नृत्य का प्रकार “लास्य” प्रकार है तो महादेवलीला का नृत्य “ताण्डव” प्रकार के अन्तर्गत कहा जायगा। क्योंकि महादेवलीला में भगवान शंकर की ही भावना प्रगट की जाती है।

सच्चिदानन्द पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म श्रीकृष्णने गोकुल में जन्म लिया है यह जानकर सुर, नर, मुनि ब्रह्मादि देवता तथा शिव–सनकादि भगवान श्री बालकृष्ण के दर्शन को आते हैं और धन्यता का अनुभव करते हैं यह कथा सुप्रसिद्ध है। तत्भावानुसार सम्प्रदाय में छठी के रोज यानि व्रज भाद्र कृष्ण त्रयोदशी के दिन पालना दर्शन के समय सूरदासजी रचित “बाला में जोगी जस गाया” यह पद गाया जाता था। पश्चात् वैष्णव कलाकार देवाधिदेव महादेवजी का जोगी के वेशमें स्वांग सजाकर नृत्य करते हुए तथा पद

का भाव जताते हुए मंदिर के चौक में उपस्थित होते थे और पालना के दर्शन खुलते ही उक्त पद का गान समाज सहित किया करते थे ।

कहा जाता है कि भवाईवाले श्री गिरधरलालजी महाराज के समय व्रज-प्रदेश के करहला के रासधारी ब्राह्मणों में से किसी योग्य व्यक्ति को जोगीका पात्र बनाकर महादेवलीला की जाती थी ।

गुजरात में अष्टछापके स्थापक श्रीमद् विट्ठलनाथजी के सेवक और "दोसो बावन वैष्णवन की वार्ता" में जो "दया भवैया" नाम से प्रसिद्ध है उसके परिवार की जाति के लोग भवाई करते थे । उनमें से भक्ति भाववाले एवं नृत्य, गान, वेशभूषा इत्यादि में प्रवीण ऐसे कुछ कलाकारों का वैष्णव आचार्यों ने वैष्णवी दीक्षा देकर उनको अपना आश्रित बना लिया था । ऐसे लोग सम्प्रदाय की कीर्तन प्रणाली के गायक-वादक भी बन चुके थे । उनमें से कुछ योग्य व्यक्ति को जोगीका स्वांग बनाकर महादेवलीला का आयोजन किया जाता था । तत्पश्चात् मंदिरों के अधिपति गोस्वामी महाराजश्री अपने मंदिरों में ढाढ़ी लीला तथा महादेवलीला का आयोजन कराने का आग्रह रखते थे । प्रति वर्ष क्रमशः राधाष्टमी और छठी के दिन नियत क्रम में श्रीजी सम्मुख नृत्य, गान आदिका आयोजन किया जाता था ।

इस प्रकार गायन, वादन के उपरान्त नर्तन कलाने भी पुष्टि सम्प्रदाय में अपना योग्य स्थान प्राप्त कर लिया । यही नहीं गोस्वामी स्वयं इस में रस लेने लगे थे जिसके प्रत्यक्ष उदाहरण में गोकुल के गो. श्री कन्हैयालालजी महाराज का उल्लेख पर्याप्त होगा ।[१]

---

[१] पु. मा. भक्ति संगीत भाग-१ खण्ड-२ पृष्ठ. १२५

लेखक के पिता श्री छबीलदासजी पू. पा. गो. श्री कन्हैयालालजी महाराज के सम्पर्क में आये हुए थे।[1] उन्होंने जीवन पर्यंत लगभग पचास वर्ष तक ढाढ़ी लीला में ढाढ़िन बनकर और महादेव लीला में शंकर का स्वांग बनाकर नाच–गान सहित कांकरोली के अन्तर्गत पाटन (उ. गु.) के मन्दिर में उल्लेखनीय सेवा की थी।

महादेवलीला की प्रथा में गायेजानेवाले पदों में से वे निम्न पदों का नृत्य सहित गान करते थे :—

१. हे दैया मतवाला जोगी द्वारे तेरे आया है।
२. आयो है अवधूत जोगी कन्हैया दिखलावे हो माई।
३. बाला मैं जोगी जस गाया।[2]
४. दिल दा मेरा सांवरा दार दरस दिखाजा।[3]
जांघिनी काछिनी कटि–पिताम्बर, श्रवन कुंडल सिर मोर मुकुट।
घूंघरवारी अलकें झलकें (मेरे) नैनों में समाजा॥
बंसी धुनि जमुनातीर सुनत ही मन होत अधीर
सपने में दरस दिखाय के (मेरा) सकल दुःख मिटायजा॥
जानकीदास भयो उदास निकसत नाहिं यह पापी श्वास
साँवरी सुरत मोहिनी मूरत (मेरी) तनकी तपत बुझाजा॥

---

१. देखिये : गो. श्री कनैयालालजीनुं जीवन अने साहित्य पृ. सं. ९२ प्र. आ. १९७२

२. स्वरलिपि के लिए कृ. देखिये अ. छा. भ. सं. भाग—२ खण्ड—३ पृ. सं. २३८

३. उपर्युक्त प्रथम दोया तीन पद गाने के पश्चात् रीति के पलना गाये जाते हैं।

प्रस्तुत पद बिदा के समय गाते थे।

परिशिष्ट-४

इस ग्रन्थके पृष्ठ ९२ से पृष्ठ ११५ तक कीर्तनकी जो प्रथम पंक्ति दी गई है उसकी पहिचान के किये अन्त में कोष्टकमें शब्द दिये गये है जैसे कि (मंगला), (छाक), (वधाई) (रथयात्रा) (वसंत) (महाप्रभुजीकी वधाई). आदि ये सभी पद कौनसे संग्रहमें प्राप्य होंगे उसकी जानकारी निम्नप्रकार दी गई है।

मुख्यतः तीन प्रकार के ग्रन्थों में सभी पदोंका समावेश हो जाता है। (१) नित्य पद संग्रह (२) वर्षोत्सव पद संग्रह (३) वसंतधमार संग्रह। नित्य पद संग्रहः- श्री महाप्रभुजी के, श्री गुसाइजी के, यमुनाजीके, जगायवेके, कलेउके, मंगलार्तिके, न्हवायके, मंगला समयके, खंडिताके, वृत्तचर्याके, हिलगके सिंगारके, सिंगार–सन्मुखके, सुहाके, सुधराईके, ग्वालके, धैयाके, भोजनके, छाकके, भोगसरिवेके, बीरीके, राजभोग–सन्मुखके, कुंजके, पनघटके, दूपहरीके, नावके, चंदनके, खसखानेके, भोगसमयके, आवनीके, आरतीके, सायंदैयाके, बियारुके, दूधके, सैन–समयके, फूल–सिंगारके, मानके, पोढवेके, आश्रयके पद

वसंतधमार संग्रह में :- वसंतके, धमारके, होरीके, डोलके, पद.

वर्षोत्सव पद-संग्रह में :- श्री महाप्रभुजी गुसाईजी और सात बालकोंकी वधाई के पद तथा जन्माष्टमीकी वधाईके, पालनेके, राधाष्टमीकी वधाईके, वामन जयंतीके, दशहराके, रासके, धनतेरसके, रूपचतुर्दशीके, दिवारीके, गायखिलायवेके, कानजगायवेके, दीपमालिकाके, हटडीके, अन्नकूटके, गोवर्धनपूजाके, भाईदूजके, गोपाष्टमीके, देवप्रबोधिनीके, रामनवमीके, अक्षयतृतीयाके, नृसिंहजयंती के, गंगादशमीके, स्नानयात्राके. बाललीलाके, ढाढीके, दानके, सांझीके, नवविलासके, रथयात्राके, हिंडोराके, संवत्सरीके, पवित्राके, राखीके, मुरलीके, करवाके, इन्द्रमानभंगके, गोचारनके, ब्याहके, मागीसंक्रांतिके, गे दके, फूलमंडलीके, संवत्सरके, गनगौरके, मल्हारके पद.

परिशिष्ट–५ (अ)

अनुसंधान अ. छा. भ. सं. भाग-२ पृष्ठ सं. २४४ नट के पश्चात्

राग—नटनारायण, ताल–चर्चरी (झपताल अंग)

नागरी नटनारायन गायो ।।
तानमान बंधान सप्तसुर रागसो राग मिलायो ।
चरन घूंघरु जंत्र भुजनि पर नीकों झमक जमायो ।।
ततथेई ततथेई गति में गति लै मोहनलाल रिझायो ।
सफल त्रियन में सहज चातुरी, अपनको अधिक दिखायो
व्यास स्वामिनी धनि धनि राधे, रासमें रंग बढायो ।।

स्थायी

×		२			०		३		
म	म	प	—	—	सा	—	रे	सा	सा
न	ट	ना	—	—	रा	—	य	—	न
सां	—	ध	—	प	प	—	रे	ग	म
गा	—	यो	—	—	ना	—	ग	री	—
ध	ध	प	—	—	रे	ग	ग	ग	म
न	ट	ना	—	—	रा	—	य	—	न
सा	रे	सा	—	—	सा	रे	ध	प	—
गा	—	यो	—	—	ना	—	ग	री	—

अंतरा

×		२			०		३		
प	–	सां	–	सां	रें	–	सां	–	सां
ता	–	न	–	मा	–	–	न	–	ब
सां	ध	सां	–	रें	सां	–	ध	–	प
धा	–	न	–	स	प्त	–	सु	र	–
सां	रें	गं	गं	मं	पं	गं	गं	सां	रें
रा	–	ग	सौ	–	रा	–	ग	–	मि
सां	रें	सां	–	प	प	–	ग	म	–
ला	–	यो	–	–	ना	–	ग	री	–

संचारी

×		२			०		३		
सां	सां	सां	ध	ध	प	–	प	–	–
च	र	न	–	धूं	ध	–	रुं	–	–
ध	–	प	–	प	ध	प	रे	ग	–
जं	–	त्र	–	भू	ज	नि	प	र	–
म	–	प	–	–	सां	सां	ध	–	प
नी	–	कौं	–	–	झ	म	क	–	ज
प	रे	ग	म	प	म	सा	रे	सा	–
मा	–	–	–	–	यो	–	–	–	–

‘आभोग’ अंतरा अनुसार

परिशिष्ट-५ (ब)

अष्टछापीय कीर्तन संगीत परंपरामें ७४ रागों का प्रचलित १० थाटों में विभाजन

थाट भैरव (८)

१. भैरव
२. प्रभात-भैरव
३. रामकली
४. रामकली (प्र-२)
५. खट
६. ललित पंचम
७. गौरी
८. देवगन्धार

थाट बिलावल (१२)

१. बिभास
२. बिलावल (शंकराभरन)
३. अल्हैया बिलावल
४. नटबिलावल
५. कुकुभबिलावल
६. गौडबिलावल
७. देवगिरिबिलावल
८. नट
९. नट नारायण
१०. बिहाग.
११. बिहागरा
१२. शुद्ध बसन्त

थाट भैरवी (१)

१. माल कौंस

थाट आसावरी (४)

१. धनाश्री
२. आसावरी
३. सामेरी
४. जोगिया आसावरी

थाट तोड़ी (१)

१. तोड़ी

थाट पूर्वी (७)

१. परज
२. पूर्वी
३. पूर्वी कल्याण
४. गौरी
५. श्री
६. मारू
७. जेतश्री

थाट खमाज (९)

१. बड़हंस
२. मल्हार (मेघ)
३. शुद्ध मल्हार
४. गौड़ मल्हार
५. सोरठ मल्हार
६. जंगला
७. खमाज
८. सोरठ
९. जय जयवन्ती

थाट मारवा (४)

१. ललित
२. पंचम
३. ललित बसन्त
४. पंचम बसन्त

थाट कल्याण (११)

१. हिंडोल
२. हिंडोल प्र.२.
३. गौड़ सारंग
४. मालव
५. हमीर
६. हमीर कल्याण
७. यमन
८. कल्याण
९. श्याम कल्याण
१०. केदार
११. हिंडोल बसन्त

थाट काफी (१७)

१. सूहा
२. सुघराई
३. सूहा बिलावल
४. सारंग (वृन्दावनी)
५. मधमाध सारंग
६. सामन्त सारंग
७. नूर सारंग
८. सूर मल्हार
९. धूलिया
१०. नट मल्हार
११. काफी
१२. कान्हरा
१३. बागेश्री कान्हारा
१४. नायकी कान्हरा
१५. अडाना
१६. रायसो
१७. सिंधूरा कान्हरा

परिशिष्ट–६

"मन्दिरों का द्रुपदगान"

भरतीय संस्कृति की ललित कलाओं में संगीत–कला का महत्त्वपूर्ण स्थान है । अति प्राचीन समय से इसकी धारा अविच्छिन्न रूप से बहती आ रही है जिसका श्रेय देवालयों और राज्यालयों को ही दिया जा सकता है । देवालयों में अपने आराध्य देव को संगीत द्वारा प्रसन्न करने का उद्‌देश्य था तो राज्यालयों में राजा महाराजाओं को खुश करने के लिए संगीत का उपयोग किया जाता था ।

इन दोनों प्राचीन परंपराओं में देवालयों यानि "मन्दिरों का द्रुपदगान" के विषय में कुछ विचार व्यक्त किये गये हैं ।

आज हमें मंदिरों के एवं राज्यालयों की द्रुपद गान शैली का जो संगीत उपलब्ध होता है उसकी परंपरा का प्रारंभ राजा मान के समय हुआ और मंदिरों की परंपरा का समय राजा मान के समय से पंद्रह–बीस वर्षों के पश्चात् ई. स. १५०० तक से पाया जाता है ।

उस शताब्दी में द्रुपद की चार प्रकार की बानियां मानी जाती थीं । इनमें से आज जिसको " गोबरहारी बानी" कहते हैं यह वास्तव में मंदिरों की बानी कही जायगी । अष्टछाप के श्री कुंभनदासजी से उसका प्रारंभ हुआ । इस द्रुपदगान शैली को "गोवर्द्धनधारी की बानी" के नाम से पहिचानने लगे । सर्व श्री कुंभनदासजी, चतुर्भुजदास जी, कृष्णदासजी, छीतस्वामी आदि अष्टछाप के सभी महानुभाव प्रायः अपनी सभी पद–रचनाओंमें "गिरधारी" "गोबरधनधर", "गिरिधरनाथ". "गोवर्द्धननाथ" आदि नामोंमें से किसी नाम को अपनी छाप के साथ जोड़कर रचना किया करते थे । ये "गोवर्द्धनधर" ही आज के 'श्रीनाथजी" हैं । भक्त कवि मीरांबाई भी अपने पदों में "गिरधर" नाम का प्रयोग अपनी छाप के साथ कर पद–रचना किया करती थीं । अष्टछाप के

कवि महानुभाव गोवर्द्धनपर्वत पर के श्रीजी के मंदिर में कीर्तन–गान किया करते थे। इस प्रकार "गोवर्द्धन पर्वत", पासके गोवर्द्धन गांव तथा "गोवर्द्धनधारी" नामों से इस बानी का संबंध जुड़ गया।

अब हम "मंदिरों का द्रुपदगान" की बात करेंगे।

वैसे तो उत्तर भारत में गणेशजी के, भगवान शंकर के, भगवान राम आदि के मंदिर मी स्थापित किये गये हैं। इन मंदिरों में भी उसी समय में द्रुपद के भक्तिगान गाये जाते थे किन्तु इसकी परंपरा और प्रणाली स्थगित हो जाने के कारण आज उनके भक्ति–गान के द्रुपद अल्प प्रमाण में प्राप्त होते हैं।

द्रुपद गायन का आरंभ और उसकी सुरक्षा व्रजमंडल के हमारे मंदिरों से ही होती रही है। व्रजमंडल उसका मुख्य स्थान है जहां राधा–कृष्णोपासक चतुः संप्रदाय–पुष्टि, चैतन्य, गौडिया और राधा–वल्लभ–के स्थापकों–श्री वल्लभाचार्यजी, श्री चैतन्यमहाप्रभु, श्री हरिदास स्वामी और श्री हितहरिवंशजी–ने अपने–अपने मंदिरों में सेवा–पूजा के साथ संगीत के माध्यम द्वारा भगवान के भक्तिमय गुणगान को जोड़ दिया है।

इन चारों संप्रदायों के सैकड़ों मंदिर अस्तित्व में हैं। राधा–कृष्ण के लीला–भेदों की स्वरूपासक्ति अनुसार स्वरूप(मूर्ति)की स्थापना की जाती है। किन्तु आज इन चारों संप्रदायों की सेवा प्रणाली तथा (द्रुपद-गान-) गान-शैली आदि परंपराओं में पर्याप्त अन्तर आ गया है।

श्री चैतन्यमहाप्रभुजी का बंगाल से संबंध होने के कारण वहां के संगीत तथा भाषा के प्रभाव से उनकी कीर्तन–गान–शैली में परिवर्तन हो गया है। परिणामतया पद–रचनाओं के स्थान अधिकतर हरिनाम–स्मरण और हरि–नाम–संकीर्तन का प्रभाव बढ़ता गया है। श्री हरिदासजी के गौडिया संप्रदाय के मंदिरों में उनकी गान–परंपरा केवल भावुक सज्जनों के हाथों में कुछ वर्षों तक रहने से राग–ताल और बंदिशों की प्राचीन गोरबहारी

बानी की द्रुपद–शैली के स्थान पर उनकी स्वतंत्र शैली दिखाई देती है। केवल राधावल्लभ संप्रदाय के कीर्तनों की रचनाएँ अधिकतर अष्टछाप के महानुभावों की रचनाओं से मिलती–जुलती प्राप्त होती हैं जिनमें राधावल्लभ–संप्रदाय के स्थापक गोस्वामी श्री हितहरिवंशजी के चौरासी पदों के उपरान्त उनकी सेवक–परंपरा के अष्टमहानुभावों की रचनाएँ विपुल प्रमाण में प्राप्त होती हैं। इस के साथ उनकी स्वतंत्र गान-शैली भी प्रचार में है। इन चारों संप्रदायों के मंदिरों में से श्रीमद् वल्लभाचार्यजी के पुष्टि संप्रदाय के मंदिरों में प्राचीन द्रुपद परंपरा के कीर्तनगान की प्रणाली आज तक चालू रही है।

अतः अब हम पुष्टि–संप्रदाय के मंदिरों की द्रुपद–कीर्तन–गान परंपरा के संबंध में अपने बिचार प्रस्तुत करेंगे।

"अनुपम–संगीत रत्नाकर" के अनुसार द्रुपद का जो स्वरूप दिया गया है वह निम्न प्रकार है :–

"गीर्बाणमध्यदेशीय भाषा साहित्य राजितम्। द्विचतुर्वाक्यसंपन्नं नरनारी कथा श्रयम्॥

शृंगाररसभावाद्यं रागालापपदात्मकम्। पादान्तानुप्रासयुक्तं पादान्तयुगकं च वा॥

प्रतिपादं यत्रबध्यमेवं पादचतुष्टयम्।उदग्राहध्रुवकाभोगान्तरं ध्रुवपदं स्मृतम्॥

द्रुपद के उक्त स्वरूपानुसार हमारे द्रुपदों में संस्कृत–मिश्रित व्रज–भाषा का साहित्य मुख्य अंग माना गया है; इसमें नर–नारी यानि राधा–कृष्ण की लीलाओं का वर्णन, शृंगार रस की प्रधानता, चार चरण एवं पद के अन्त में अनुप्रास आदि विशेषताओं का प्राधान्य पाया जाता है।

इन विशेपताओं में भाषा का उल्लेख प्रथम किया गया है। अतः भक्ति–प्रधान इन चतुः सम्प्रदायों में रचनाकारों की भाषा का उच्चारण स्पष्ट होना

अत्यावश्यक माना जाता है क्योंकि भक्ति की भावात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति भाषा के द्वारा ही होती है और संगीत उसका पूरक अंग होता है । इस प्रकार के ध्रुपद–गान के रचनाकार भक्त महानुभावों को अनुभूति के जो दर्शन हुए थे उसीको उन्होंने अपनी "वाणी" के माध्यम से प्रकट किया है । अतः सभी वैष्ण संप्रदायों में पदों को "वाणी" कहने का भी रिवाज है । इनमें राधा–वल्लभ संप्रदाय के महानुभावों की पद–रचना के ग्रन्थों (हस्त–लिखित तथा प्रकाशित) में पदों के लिए "वाणी" का ही शब्द–प्रयोग किया गया है। इस प्रकार अष्टछाप के "पद" को भी वाणी कहनेका रिवाज है । इस बात से स्पष्ट होता है कि ध्रुपद–गान की चारों प्रकार की प्राचीन शैलियों में "बानी" शब्द का जो प्रयोग हुआ है वह वस्तुतः इसी "वाणी" शब्द का ही व्रजभाषीय रूप है जिसका प्रथम प्रयोग "गोवरहारी(गोवर्द्धनहरि)वानी" के रूप में पाया जाता है ।

इसके पश्चात् राज्याश्रित गायक–वादकों द्वारा "नौहारी बानी", डागुरी बानी", तथा "खंडारी बानी" का प्रादुर्भाव हुआ ऐसा माना जाता है ।

बुजुर्गों से सुना है तद्नुसार कहा जाय तो नौहारी बानी में नौ प्रकार (जैसे –दुगुन, तीगुन, आड, डेढ आदि)के अंगों से ध्रुपद्–गान किया जाता था । इसमें मुख्यतः गिनती का हिसाब रहता है । जब कि नौहारी बानी के कुछ अंगों के उपरान्त डागुरी बानी में मींड, गमक, घसीट आदि तथा खंडारी में खंड–खंडकरके गाने का प्रचार होना संभवित है । इसके अतिरिक्त गांवों तथा प्रदेशों के नाम पर से भी इन नामों के प्रचलित होने की एक मान्यता हैं ।

गोबरहारी बानी के ध्रुपद् सीधे–सादे और सरल ढंग से गाये जाते हैं । इसमें तान, बोल–तान, आड, डेढ आदि किसी अंग का प्रयोग नहीं किया जाता । किन्तु इसमें स्वर, राग–शुद्धि, स्वर–स्थान, लय, शब्दोच्चारण आदि की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है ।

संप्रदाय के अलावा अन्य द्रुपद गायकों में स्व. भरतजी व्यास का नाम लिया जा सकता है जौ कुछ बर्ष पूर्व कुछ वर्षों के लिए बडौदा संगीत विश्वविद्यालय में द्रुपद–गान के प्रधानाध्यापक के रूप में रहे थे ।

आज–कल प्रचार के द्रुपदों में अधिकतर स्थायी और अन्तरा ही सुनने में आते हैं । जबकि अष्टछापीय परंपरा में द्रुपदों में स्थायी, अन्तरा, संचारी तथा आभोग ये चारों विभाग रहते हैं । इन चारों विभागों में प्रत्येक के चार–चार आवर्तन होते हैं । तथापि कुछ ऐसे द्रुपद भी मिलते हैं जिनमें स्थायी के दो या तीन आवर्तन भी पाये जाते हैं तो स्थायी के चार तथा अन्तरा के पांच आवर्तनवाले द्रुपद भीं पाये जाते हैं !

इस प्रकार पुष्टि–सम्प्रदाय की उक्त द्रुपद–गान परंपरा में निश्चित् रागों एवं निश्चित भाषा का ही प्रयोग किया जाता है ।"अष्टछापीय भक्ति–संगीत" के द्वितीय तथा तृतीय खंड के परिशिष्ट ५ (ब) में जिनका प्रचलित दस थाटों में विभाजन प्रस्तुत किया गया हैं इन ७४ रागों में ही द्रुपद–गान की परंपरा प्राप्त होती है । इनके अलावा अन्य राग बर्ज्य समझे जाते हैं । उसी प्रकार द्रुपद–गान की भाषा ब्रज–भाषा ही मान्य है ।

किन्तु वर्तमान परिस्थिति शोचनीय है। एक ओर प्राचीन परंपरा के कीर्तनकारों कीं संख्या धीरे–धीरे कम होती जा रही है वहां दूसरी ओर अर्वाचीन कीर्तन गानेवाले अधिकतर स्वैच्छिक परिवर्तनों का प्रयोग करते जा रहे हैं । परंपरा की शास्त्रीय दृष्टि से इनके कीर्तनगान में राग, ताल, लय, आवर्तन, शब्दों की सुसंगतता आदि के स्पष्ट दर्शन नहीं होते । इसके उपरान्त खयाल आदि प्रचलित आधुनिक शैलियों का असर भी दिखाई पड़ता है ।

हमारी प्राचीन कीर्तन परंपरा के लिए पिछले पचास वर्षों से "हवेली संगीत" नाम प्रयोग में आ रहा है । परिणामतया गुजराती "धोळः'(गुजराती भाषा में प्रयुक्त गरबा जैसी एक प्रकारकी लोक-गायन शैली)का भी हवेली

संगीत के अन्तर्गत प्रयोग प्रारंभ हो गया है जिसको संप्रदाय को सेबा-प्रणालीं के बिरुद्ध कहा जायगा।

उपर्युक्त विचारों से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि अष्टछापीब द्रुपद-गान परंपरा की रक्षा तथा शिक्षा हमारे मन्दिरों के द्वारा ही होती रहती थी जो आज प्रायः लुप्त-सी होती जा रही है। दूसरी ओर भोपाल, वृन्दावन, बनारस कलकत्ता आदि स्थानों में द्रुपद-गान प्रचार की संस्थाएं तथा अन्य संगीत-विद्यापीठें द्रुपद-गान प्रचार का प्रशस्य कार्य कर रही हैं।

इस प्रकार "द्रुपद" प्रचार की जो-जो संस्थाएं हैं उन सबसे मेरी नम्र प्रार्थना है कि वे सभी, जिसकी परंपरा अति प्राचीन है तथा जिसका साहित्य भी विपुल और भक्तिभाव पूर्ण है ऐसी अष्टछापीय द्रुपद-गान परंपरा को अपने कार्यक्षेत्र में समाविष्ट करें।

इस परिस्थिति में इस के संबंध में जिनकी जिम्मेदारी सबसे अधिक हैं ऐसे मंदिरोंके माननीय अधिपति गोस्वामी महोदय, संप्रदाय के धनाढ्य सेवक तथा संप्रदाय के भावुक वैष्णव लोग यदि इस दिशामें कुछ-ठोस कार्य का आरंभ करने से विमुख रहेंगे तो मंदिरों के द्रुपद गान की प्राचीन परंपरा सर्वथा लुप्त हो कर आज की प्रचलित भिन्न-भिन्न प्रकारकी मनोरंजक गायन-शैलियां इस का स्थान ले लेंगीं।

परिशिष्ट–७

धोळ

परिशिष्ट–६ में सम्प्रदाय के मन्दिरों में गाये जानेवाले द्रुपदों की चर्चा की गयी है। यह द्रुपद् गान शैली संप्रदाय की शिष्ट संगीत की प्रमुख धारा है।

इस "शिष्ट–संगीत" की धारा के साथ संप्रदायमें "लोक–संगीत" का प्रवाह भी बहता रहा है। इस में यह न भूलना चाहिए कि लोकजीवन में वैष्णव धर्म की भावना युक्त "लोक–संगीत" की रसगंगा प्रवाहित करने में गुजरात का बहुत बडा योगदान हैं।

"लोक–संगीत" के इस प्रवाह में "पद" से मिलता–जुलता "धोळ" नामक एक लोक–गीत प्रकार संप्रदाय को गुजरात की विशिष्ट देन है।

अब हम "धोळ" पर कुछ विचार प्रस्तुत करेंगे।

सम्प्रदाय के 'धोळ' शब्द के रूढ़ अर्थ में धोळ के गीतों के अन्तर्गत अन्य- लोक–शैली के धोळ के अन्य प्रकारों को भी 'धोळ' कहने का प्रचार है। संप्रदाय के 'धोळ' गीतों का उद्गम श्रीमद् बिट्ठलेश्वर के समय में असारवा के सेवक गोपालदासजी द्वारा हुआ हैं। उन्होंने नौ की संख्या में धोळ की रचना की है, जो गुर्जर भाषा में ही नहीं, गुर्जर लोक–गीतों की शैलीमें भी लिखे हुए स्पष्ट होते हैं। आज सभी वैष्णवगण लोक–गीत के ढंग से गाते हैं। तथापि ध्यान रहे कि इस रचना को नवाख्यान या वल्लभाख्यान के नाम से लिखित और प्रकाशित पुस्तक में स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होते हैं। यही नहीं प्रत्येक आख्यान के शीर्षक में—राग केदार, राग परज, राग सामैरी इत्यादि राग–रागिणी ही पाये जाते हैं।

इस से ज्ञात होता है कि उस समय राग वर्गीकरण में राग कुटुंब की व्यवस्था प्रचार में थी।

"धोळ" शब्द मूलतः संस्कृत "धवल" शब्द से निकला हुआ है। धवल से 'धउल' और बाद में "धोळ" शब्द प्रचार में आया है। संस्कृत "धवल" शब्द प्राचीन है। किन्तु सम्प्रदाय में जो "धोळ" गाये जाते हैं उनका उद्‌गम और प्रचार पिछले ३०० वर्षों से अधिक नहीं हैं।

आजकल "धोळ" के गीत–प्रकार को कुछ लोग हवेली संगीत मानने लगे हैं। किन्तु यह मान्यता सम्प्रदाय की परंपरा, प्रणाली तथा गान–शैली से सर्वथा भिन्न है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, "धोळ" शब्द तथा गीत–प्रकार का इतिहास ३०० वर्षों से अधिक नहीं है। श्रीनाथजी के मेवाड़ पधारने के पश्चात् गुजरात और सौराष्ट्रमें सम्प्रदाय के मंदिरों कीं स्थापना होती रही और गोस्वामी महाराज श्रियों द्वारा उन के सेवक लोग वैष्णवी दीक्षा लेकर वैष्णव बनते रहे। इन भावुक वैष्णवोंने प्रचलित लोक गीतोंकी तर्जों के आधार पर अपनी भाषा में जो गीत–रचना की है इसे ही "धोळ" कहा जाता है। यह "धोळ" आज के 'लोक–संगीत' तथा 'सुगम–संगीत' के समान माना जायगा।

"धोळ" के स्वरूप तथा प्रकार के संबंध में प्रसिद्ध विद्वान श्री जेठालाल गो. शाह लिखते हैं तद् अनुसार "पद तथा धोळ यह एक प्रकार का काव्य का प्रकार है। काव्य–शास्त्र की दृष्टि से यह उर्मिकाव्य (Lyric=प्रगीत) प्रकार में गिना जायगा। पद् और धोळ के बीच सूक्ष्म अन्तर हैं।"[१] इस से स्पष्ट है कि "धोळ" प्रगीत प्रकार का "भक्ति–भाव पूर्ण काव्य–प्रकार" ही है।

हकीकत तो यह है कि गुजरात–सौराष्ट्र में संप्रदाय की भगवत्सेवा के बिभिन्न उत्सवों, त्यौहारों, जन्म–बधाइयों तथा अन्य मांगलिक प्रसंगों पर भावुक

---

[१] "धोळ–पद संग्रह–भा. १. "आमुख" पृ. ४ ले. चंपकलाल छबीलदास कीर्तनकार

भक्त हृदयों के द्वारा उत्साह के आवेश में आकर गीत गानेकी रस वृत्ति के कारण गुर्जर—लोक संगीत में घोळ, रास, गरबी, हींच—हमची आदि शैलियों का उद्भव हुआ है। “घोळ” के संग्रह कर्ताओंने परंपरा के अनुसार इन सभी को “घोळ” के अन्तर्गत रखा है।

“घोळ” लोक—संगीत का ही एक प्रकार होने के कारण विशेष कर स्त्री वर्ग के लिए स्वभाविक और सरल होने से वे विना किसी तालीम आसानी से ग्रहण कर सकती हैं।

वैष्णव महिलाएँ हाथ से ताली देते हुए खड़ी रह कर या वर्तुलाकार घूमते हुए इन गीतों का गान करती हैं और अपना आनंद—उल्लास व्यक्त करती हैं। कभी—कभी रास और हींच—हमची में पुरुष बर्ग की जुड़ जाता है और उत्साह के साथ उत्सव की शोभा बढ़ाता है।

आज से सौ बर्ष पूर्व वैष्णव भक्त कवि श्री दयारामभाई तथा श्री शोभा माजी तक के घोळ पदों की जो हस्त—लिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं उन्हीं के आधार पर गो. वा. श्री लल्लुभाई देसाई ने सर्व प्रथम “विविध घोळ पद” नामक पुस्तक प्रकाशित की। बाद में गो. वा. श्री बसंतरामभाई शास्त्री ने परिश्रम लेकर उसी पुस्तक को सुधार के साथ पुनः प्रकाशित किया। वैसे तो घोळ पदकी छोटी—छोटी पुस्तिकाएँ वैष्णवों की ओर से भी प्रसिद्ध होती रहती हैं। किन्तु उक्त प्रथम दो महानुभावों ने घोळ पद के उपरान्त नीति—नियम के पाठ तथा श्री यमुनाजी के चालीस पदों का भी संकलन कर के प्राप्त सभी घोळ को अपनी पुस्तक में समावेश किया है।

हमारे “अष्ट छाप केन्द्र” से भी “प्राचीन घोळ पद—संग्रह-भा. १” प्रगट किया गया है। इस संग्रह में प्राचीनता की दृष्टि से गत सौ वर्षों के पूर्व के “घोळ” का ही समावेश किया गया है।

अद्यापि प्रकाशित प्रमुख धोळ संग्रहों में अधिकांशतः प्राचीनता की दृष्टि से निम्न–विषयों के 'धोळ' पाये जाते हैं–जैसे, श्री यमुनाजी, श्रीनाथजी, सात स्वरूप, प्रभु प्रागट्य, पारणा (पलना), बाललीला, श्रीमहाप्रभुजी, श्री गुंसांईजी, सात बालक, श्री गोकुलनाथजी, श्री वल्लभवेश, कन्हैयालालजी महाराज, दानलीला, रासलीला, हींच–इमची, व्रज, श्री दाउजी, मोटी (बड़ी) व्रज परिक्रमा, छोटी–व्रज परिक्रमा, आश्रय विनती आदि के धोळ।

उपर्युक्त प्रकार के गुजराती तथा सौराष्ट्री प्राचीन शैली के धोळ वैष्णव समाज द्वारा गाये जाते हैं। मन्दिर के निज मन्दिर, तिबारी, चौक तथा जगमोहन के स्थान के अतिरिक्त अन्य खुले स्थान में इन धोळ गीतों का आयोजन किया जाता है। यह सम्प्रदाय की मर्यादा है। जब तक इस मर्यादा का पालन किया जाता हो तब तक कोई आपत्ति नहीं। किन्तु आज सम्प्रदाय के मन्दिरों में प्रभु सम्मुख गाये जानेवाले अष्टछापीय कीर्तन गान के स्थान पर इस प्रकार के धोळ–गीत गाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। इतना ही नहीं आज इस प्राचीन धोळ शैली के गीत भी आधुनिक पाश्चात्य संगीत के प्रवाह की ओर झुकते जा रहे हैं।

काव्यत्व की दृष्टि से देखा जाय तो 'कहीं की ईंट, कहीं का रोडा ''जैसी स्थिति पायी जाती है अर्थात् काव्यत्व के स्थान पर उटपुटांग शब्दावली से युक्त बे सिर पैर के नये धोळ गीत भी प्रचार में आ रहे हैं। इस प्रवृत्ति को यदि समय पर रोका न गया तो प्राचीन द्रुपद–गान बरंपरा के साथ यह प्राचीन–धोळगीत शैली भी आधुनिक रंग में रंग कर यदि लुप्त हो जाय तो आश्चर्य नहीं।

परिशिष्ट–८

'अष्टछापीय भक्ति संगीत'–भाग–२ खंड–३–४ एवं पूर्तिग्रंथ खंड–५ में स्वरलिपि बद्ध पदों में प्रयुक्त कठिन शब्दों के हिन्दी एवं गुजराती अर्थ

अ

अकुलाई–व्याकुल होती है–વ્યાકુળ થઈ જાય છે.
अगन–अग्नि–અગ્નિ, આગ.
अघाऊँ–संतुष्ट होऊँ–સંતુષ્ટ થઉં.
अघै–अघ–पाप–પાપ
अचरा–अंचल–સાડીનો પાલવ
अजहु–अभी भी–હજી પણ.
अधरन–ओठों पर–હોઠ ઉપર.
अनत–अन्यत्र–બીજી જગાએ.
अनार–दाड़िम–દાડમ.
अनुचर–नौकर–सेवक–નોકર.
अनुदिन–हमेशा–હંમેશાં.
अभिराम–सुंदर–સુંદર.
अमित–खूब–પુષ્કળ, ખૂબ.
अरगजा–केसर–चंदनयुक्त लेप–કેસર ચંદન મેળવીને કરેલ લેપ
अरबरे–अंडबंड–बेसिर पैरका–મ્હોં માથા વિનાનું.
अरुझी–उलझी हुई–ગુંચવાયેલી.
अरे है–कलह करता है–કજિયો કરે છે. આડો કરે છે.
अलकें–बाल की लटें–વાળની લટો.
अलबलाई–सच्चीझूठी बातें–ખરી–ખોટી વાતો.
अलि–भौंरा–भ्रमर–ભમરો.
अलिसुत–भौंरा–ભમરો.
अवगाहत–गहराई में जाना–ઊંડા ઉતરવું.
अवेर–देर–વાર, મોડું.
असुवन–आँसू–આંસુ
अंगीकार–स्वीकार–સ્વીકાર
अंत हु सौं–अन्त में–છેવટે
अंबर–आकाश–આકાશ.
अंबुज कमल–કમળ

आ

आगरी–आगे–આગળ
आन–(i) दूसरा–બીજું, અન્ય.
(ii) आकर–આવીને.
(iii) सौगन्ध–આણ.
आरत–(i) इच्छा–ઈચ્છા.
(ii) दुःख–દુઃખ.
आस–आशा–આશા.

उ

उखल–उखल–ખાંડણિયો.
उघटन–नीकलना–प्रगट होना–ઉત્પન્ન થવું.

उजियार–प्रकाश–પ્રકાશ.
उझकि–आश्चर्यसे–આશ્ચર્યથી.
उझकिपरी–चौंक उठी–ચમકી ગઈ.
उडुगन–तारे–તારાઓ.
उदै–उदित हुआ–ઉદય થયો; ઊગ્યો.
उनींदे–नींदसे भरे–જાગરણને કારણે ઘેરાતાં.
उपरना–उपवस्त्र–ઉપવસ્ત્ર, ઉપરણું.
उबार्यो–बचा लिया–तार दिया–ઉગાર્યો, તાર્યો.
उमता अई–उन्मत्त हो जाता है–ઉન્મત્ત થઈ જાય છે.
उलट–उलटा–ઉલટું.
उसीर–खस–ખસ (સુગંધી યુકત ઘાસ)

ओ

ओंचक–अचानक–અચાનક

औ

और–दूसरा–अन्य–બીજું.

क

कचरज–कीचड़–કીચડ.
कटि कसिया–कमर पर कस कर–કમર પર કસીને
कठुला–गलेकी हँसुली–ગળાની હાંસડી
कनिया–कटि पर–કેડમાં
कमठ–कछुआ–કાચબો.
कमोरी–मटकी–નાની માટલી.
करारे–किनारे–કિનારે
करोरन–करोडोंकी–કરોડોની
कल–शान्ति–चैन–શાન્તિ, ચેન.
कलेवा–सुबहका नास्ता– સવારનો નાસ્તો.
कहाँ लौ–कब तक–ક્યાં સુધી.
कंचुकी–कंचुकी–કાંચળી.
कंठसरी–गलेमें सरकती हुई माला–ગળામાં ફરતી માળા.
काछिनी–घेर युक्त कच्छ–ઘેરદાર કાછોટો.
कानि–लाज–આબરૂ–મર્યાદા.
कामरी–कम्बल–કામળી
कासौं–किसे, किसको–કોને
किधौं, कैंधो–अथवा तो–અથવા તો
किलकि–किलके–खुशीसे हँसे–ખુશી થઈને મોટેથી હસે.
किंकिनी–करधनी–કેડનો કંદોરો.
किंवारे किवाड़–કમાડ
किहिं–कहाँ–ક્યાં.
कुटिल लट–घुंघराले बालों की लट વાંકડિયા વાળની લટ
कुपाथें–बुरे रास्ते पर–ખરાબ માર્ગ પર
कुलकानि–कुलकी लाज–કુળની લાજ આબરૂ.
कुरंग–हिरन–હરણ.

कुलिन-ऊँचे कुल का-કુળવાન.
केहरि-सिंह-સિંહ
कोने-कोने में-ખૂણામાં, ખૂણે.
कौसेय-रेशमी वस्त्र-રેશમી વસ્ત્ર.

ख

खल-दुर्जन, ढोंगी-દુર્જન, ઢોંગી.
खिलाइ-खिलाऊँगी-खेलाऊंगी-ખવડાવીશ, રમાડીશ.
खुरमा-बालु शाही मिठाई-એક પ્રકારની બાલુશાહી મિઠાઈ.
खोरि (-री) गली-ગલી.

ग

गठजोरे-गठबंधन-છેડાછેડી.
गन-समूह-સમૂહ, ગણ.
गयो बिचाइ-बिक गया-વેચાઈ ગયું
गरल-ज़हर-ઝેર.
गल बाँही-गलेमें बाँह डालना-ગાળામાં હાથ રાખવો.
गहेरी-गहरी-ઘેરી ગાઢ
गात-अंग-અંગ
गार्यो-टाल दिया-ટાળ્યો.
गाँस-रुकावट-भेद की बात-અડચણ, રહસ્યની વાત.
गुर-गुड़-ગોળ.
गोरोचन-गोरोचन-ગોરોચન तिलक करने में प्रयुक्त सुगंधित पदार्थ

घ

घनसार-चंदन-ચંદન; સુખડ.
घुंघरवारी-घुंघराली-વાંકડી લટ.
घोख-अहीर जाति-આહીર, ભરવાડ

च

चकई-चकवी-સારસી,
चकडोर-चकई-હાથથી ફેરવવાની ચકરડી.
चकचौंधी-आँखों को चौंधा देने वाली-આંખો અંજાઈ જાય એવી.
चकोरा-चकोर पक्षी-ચકોર પક્ષી.
चक्रवाकी-चकवा मादा-ચકવી.
चख-आँख-આંખ.
चपला-बीजली-વિજળી.
चरचावें-चंदन लगाते हैं-ચંદન લગાવે છે.
चहुं ओर-चहुंधा-चारों ओर-ચારે બાજુ.
चहुँदिस-चारों दिशाओं में-ચારે દિશાઓમાં
चिकुर-बाल, केश-વાળ.
चितवत- देखता है-જુએ છે, નજર કરે છે.
चितवन-नजर-નજર, દૃષ્ટિ.
चित हूँ-चित्त में, मनमें-મનમાં, ચિત્તમાં.

चिरैयाँ-चिड़िया-ચકલી.
चुरावै-चुरा लेता है-ચોરી લે છે.
चुवत-आँसू नीकलना-चूना-આંસુ આવવાં; ચૂવું.
चुहचुहानी-पंछियों का कलरव-કલરવ
चेरो-दास, सेवक-દાસ, ચાકર
चोलना-अंगरखा-અંગરખું.
चौवा-सुगंधित लेप-સુગંધિત લેપ.

छ

छतियाँ-छाती-છાતી.
छहियाँ-छाया-છાંયડો.
छाक-छाक-वह खाना जो हलवा हों, चरवाहों आदि के खाने के लिए दोपहरमें भेजा जाता है। ભાત (ખેતરમાં લઈ જવામાં આવતું ખાણું)
छाजै-शोभित होता है-શોભે છે.
छाँडिके-छोड़कर-છોડીને.
छिन-क्षण-ક્ષણ.
छिरकत-छिड़कता है-છોડે છે, છાંટે છે.
छुहारे-कच्चा छुहारा-લીલી ખારેક.

ज

जलद-बादल-વાદળું.
जलसुत-कमल-કમળ
जहाँ-जहाँ-જ્યાં
जाई-जन्मी-જન્મી.
जुन्हाई-चाँदनी-ચાંદની.
जोर्यो-जोड़ दिया-જોડ્યું, જોડેલું.
जौलौ-जब तक-જ્યાં સુધી.

झ

झगुली-झगुला-ઝભલું, આંગડિયું.
झर बरसायो-जल बरसाया-જળ વરસાવ્યું.
झरोंकन-झरोखे से-ઝરુખામાંથી
झारूं-झाड़ देना-સાફ કરવું.
झांक्यो-देखा-જોયું.
झुँड़न जोरी-समूहमें मिलकर-સમૂહમાં મળીને, ભેગાં થઈને.
झोरी-झोली-ઝોળી.

ठ

ठठक्यौ-ठिठक गया-અટકી ગયો.
ठाढ़ी-खड़ी-ઊભેલી, ઊભી.
ठौर-स्थान, जगह-જગા.

ड

डगर (-रा)-रास्ता, मार्ग-રસ્તો, માર્ગ.
डलियाँ-डली-છાબડી.
डुलावे-डिगना-ડગવું.

ढ

ढिंग-पास, नजदीक-પાસે.
ढोटा-लड़का-છોકરો.

त

तगा-तार-તાંતણો.
तडाग-तालाब-તળાવ.

तनसुख सारी-एक प्रकार की साड़ी એક પ્રકારની સાડી.

तमचर-मुर्गा-કૂકડો.

तरनि-तनया-सूर्य की पुत्री-સૂર્યની પુત્રી, યમુના.

तहाँई-वहीं-ત્યાંજ

तहियाँ-तहाँ-वहाँ -ત્યાં

ताहिपै-उस पर-તેના ઉપર

तिमिर-अँधेरा-અંધારું.

तिय-स्त्री-સ્ત્રી, નારી.

तोऊ-तो भी-તો પણ

तुरंग-घोड़ा-ઘોડો.

तोर्यो-तोड़ दिया (संबंध)-તોડી નાંખ્યો.

तौलों-तब तक-ત્યાં સુધી.

त्रिपुरारि-महादेव-મહાદેવ, શંકર.

थ

थेंगरी-थिगला-થીગડું.

द

दनुज-दानव-દાનવ.

दमकत-चमकता है-ચમકે છે.

दरस-दर्शन-દર્શન.

दारागारादि-स्त्री-घर आदि-સ્ત્રી-ઘર વગેરે.

दुपहैरी-दुपहरी-બપોર

दुरक-दुरै-छिप जाता है-સંતાઈ જાય છે.

दुस्तरैन-पार करना कठिन-તરવું મુશ્કેલ.

द्रुमवेली-वृक्ष की लता-વૃક્ષની લતા.

द्योस-दिवस-દિવસ

ध

धुनत डोलते हैं-ડોલે છે.

न

नक बेसर-नाक का एक गहना-નાકની નથણી.

नखनि-खनावत-पैर के नखों से कुरेदना-પગના નખથી ખોતરવું.

नटवत-नाचता है-નાચે છે

नाईं- के जैसा-ના જેવું.

नातर-नहीं तो-નહિતર

नाना भात-नाना प्रकार से-अलग-अलग प्रकार से-જુદા જુદા પ્રકારે.

नाहिन- नहीं है-નથી

निकट-पास, नजदीक-પાસે

निकसी-नीकली-નીકળી.

निगम-वेद-વેદ.

नितर्तें-रोजकी अपेक्षा-રોજ કરતાં

निर्तत-नाचता है-નાચે છે.

निमेख-निमेष, क्षण-નિમિષ, ક્ષણ.

निवारक-दूर करनेवाला-દૂર કરનાર

निहारौं-देखता हूँ-જોઉં છું.

नीकी-सुंदर, अच्छी-સુંદર, સારી.

नीके-अच्छे ढंग से-સારી રીતે.
नेकु-जरा भी-જરા પણ, જરીક.
नैन (-ना)-नयन, आँख-નયન, આંખ.

प

पटकी-पटक दी-પછાડી. પટકી.
पठायो-भेजा-મોકલ્યો.
पत्याऊँ-विश्वास करता हूं-વિશ્વાસ કરું છું.
पत्यात-विश्वास करना-વિશ્વાસ કરવો.
परस-स्पर्श-સ્પર્શ
परसि-स्पर्श करके, छूकर-સ્પર્શ કરીને, અડીને.
परिरंभन-आलिंगन-આલિંગન
पलकन से-पलकोंसे-પાંપણથી.
पसार-फैलाकर-ફેલાવીને.
पंगु-लूला, लंगड़ा-લૂલો, લંગડો.
पंजिरी-जन्माष्टमी के दिन दिया जानेवाला प्रसाद-पंजिरी-પંજરી.
पंकज पाटीर की-पंकज की पंखुडियों से छायी हुई-કમળની પાંખડીઓથી છાએલી.
पाज-हद, मर्यादा-હદ, પાળ.
पाँयन-पाँवमें, पगमें-પગમાં, પગે
पिक-कोयल-કોયલ.
पीचकाइन-पिचकारी-પિચકારી.
पीर-पीड़ा-પીડા, દુઃખ.
पुलिन-तट, किनारा-કિનારો.
पूरन ससी-पूर्णिमा का चाँद-પૂનમનો ચંદ્ર.
पोहोप-पुष्प, फूल-પુષ્પ, ફૂલ.
पैठ-बाजार-બજાર.
पेंडो-मार्ग, रास्ता-રસ્તો, માર્ગ.
पोवति-पोवत-पिरोती है-પરોવે છે.
पिरोना-पिरोता हूँ-પરોવું છું.
पेखो-देखो-જુઓ.
पौरी-द्वारपर-દરવાજે

फ

फगुआ-फाग के उपलक्ष्य में भाभी के द्वारा देवर को दिया जाने वाला उपहार-હોળી ખેલવા નિમિત્તે ભાભી દ્વારા દિયરને અપાતી ભેટ.
फरकावै-फरफराना-ફરકાવે.
फबि-शोभित-શોભતાં.
फुलवा-फूल-ફૂલો.
फेरत-घुमाते हुए, उड़ाते हुए-ફેરવતાં.

ब

बकवो-बकवास-बकना-બકવાસ.
बछरा-बछड़ा-વાછરડું.
बटोही-प्रवासी-મુસાફર, પ્રવાસી.
बढ़ाउं-बढाना-વધારવું.

बदौं-जानूं -જાણું.
बना-वर-વર.
बयार-हवा-હવા.
बरखा-वर्षा, बारिश-વરસાદ.
बरबंट-बरबस-जबरन-જબરજસ્તી
बहियां-हाथ-હાથ.
बहुरि-फिरसे, पुनः-ફરીથી
बानिक-छटा-છટા
बावरी-पगली-ગાંડી, પગલી.
बासर-दिवस-દિવસ, વાર.
बाँकौं-बाँका-સુંદર, ફાંકડો, વાંકો
बिकाउं-बिकने योग्य-વેચાઉં.
बिछूरे-बिछड़ गये, अलग हुए-છૂટા પડ્યા.
बिदारन-चीर देना-ફાડી નાંખવું.
बिधना-बिधाता-વિધાતા.
बिरद्- बिरूद्-ઈલ્કાબ, પદવી.
बिरही-बिरह का-વિરહનો
बीड़ा-पान का बीड़ा-પાનનું બીડું
बीथिन-गली-ગલી.
बीरवधू-बिरह-बघूटी-વર્ષાઋતુમાં પેદા થતું એક લાલ જંતુ.
बूझत-समझते हैं-સમજેછે.
बेसर-नाक का एक गहना-નાકની નથણી.

म

भंजन-नाश करने वाला-નાશ કરનાર, ભાંગનાર.
भाजै-भाग जाना-દોડી જવું.
भान-सूर्य-સૂર્ય, સૂરજ
भोर-सुबह, प्रातः-સવાર,

म

मकरंद-फूल का रस-ફૂલનો રસ,
मग-रास्ता-રસ્તો.
मतिमंद-मंदबुद्धि-ઓછી બુદ્ધિવાળો.
मधुप-भौंरा-ભમરો.
मराल-राजहंस-રાજહંસ
महियाँ-में, भीतर-માં, અંદર
मंडित-शोभित-શોભતા.
मिला की-मिलवा देने की-મેળવી આપવાની, મેળવવાની.
मिस-बहाने-બહાને, બદલામાં.
मीन-मछली-માછલી.
मुकुलित-खिला हुआ-ખીલેલું.
मुक्ता-मोती-મોતી (નાકની નથણીનું મોતી नक बेसर)
मो पै-मुझ पर-મારા ઉપર
मोसों-मुझ से-મારાથી,
मुझ-सा-મારા જેવો.

य

या-यह-આ
याम-प्रहर-પ્રહર,

र

रच्छन-रक्षण-રક્ષણ.
रतनारे-लाल (कमलजैसे)-લાલ-રાતાં (કમળ જેવાં)
रतिपति-कामदेव-કામદેવ.
रसना-जीभ, जिव्हा-જીભ.

रसाल-मधुर-મધુર, મીઠું.
राजै-शोभित होते हैं-શોભે છે.
रावटी-तंबू-તંબુ.
रिझवत-खुश करती है-ખુશ કરે છે.
रीतु-ऋतु-ઋતુ.
रुसिबेकी-रीस करने की-રિસાવા માટેની.
रेनु-धूल-ધૂળ.
राका-रात्रि-રાત
राँभत-रँभाती है-(ગાય) ભાંભરે છે.
रैन-रात-રાત.
रोर-कलरव-કલરવ.
रोरी-कुमकुम-કંકુ

ल

लखाये-दिखाई पड़ता है-દેખાય છે.
लरियाँ-बालों की लट-વાળની લટ લીરા.
लोंदा-लौंदा-લુંદો (માખણનો)
लौन-नमक-મીઠું.

व

वरने-रंगका-રંગનું, રંગે.
वासव-इन्द्र-ઈન્દ્ર.
विरहिन-विरहिणी-વિરહિણી, વિયોગિની.
विराजै-शोभित होता है-શોભે છે.
विहरइ-विहार करते हैं-વિહાર કરે છે.
व्है-होकर-થઈને.

श

श्रुतिरूपा-गोपीजनों के एक समूहका प्रकार-ગોપીજનોનો એક સમૂહ
श्रवनन-कान-કાન.
श्वपच-चाण्डाल-ચંડાળ.

स

सगरी-सारी-સઘળી, પૂરી, આખી
सचु-सुख-સુખ.
सजल-पानी से भरा-પાણીથી ભરેલું
सरबन-कान-કાન.
सरवाई-मित्रता-મિત્રતા, મૈત્રી.
सरोज-कमल-કમળ, સરોજ.
सहचरी-सखी-સખી.
सांकरी-संकरी-સાંકડી.
साँचि-सच-સત્ય, સાચું.
साँवल-श्याम रंग का-શ્યામ રંગનું
साँस-श्वास, सांस-શ્વાસ.
सिधारे-गये-सिधाये-સિધાવ્યા, ગયા
सिंघारन-संहार करना-સંહાર કરવો
सीमंतिनी-नारी-નારી, સ્ત્રી.
सुवन-पुत्र-પુત્ર-દીકરો
सुवा-तोता-પોપટ
सेन-इशारा-ઈશારો
सेहरा-सेहरा-ફૂલનો તોરો જે વરરાજાના ફેંટા સાથે બાંધવામાં આવે છે.
सोतन-सौत-શોક્ય.

ह

हरणे-हरनेवाला-હરણ કરનાર, લઈ લેનાર.
हुती-थीं-હતી.
हुतौ-था-હતો.
हुलरावति-लोरी गाती है-હાલરડું ગાય છે.
हेरत-देखता है-જુએ છે.
हौले-हौले-धीरे-ધીરે.

शुद्धि पत्र

पूर्वग्रंथ अ. छा. म. सं, भा–२ (खण्ड–३,४) का संपूर्ण शुद्धि–पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३	१३	रे	$\underline{\text{रे}}$
१४	२	रे	$\underline{\text{रे}}$
१४	९	ध	$\underline{\text{ध}}$
१४	१९	ध	$\underline{\text{ध}}$
१६	१	रें	$\underline{\text{रें}}$
१६	१	$\underline{\text{ग}}$	गं
१६	२	चठिकाठि	चढिकाढि
१६	५	क्षगुली फेंह	झगुली फेंट
१६	१५	खलन	खेलन
१६	१५	लामै	लागे
१६	२०,२१,२२		निं सा | ग म | — प | म ग निं स | दि ना | — की | टे — × | ० | २ | ० | म $\underline{\text{रे}}$ | — सा | — वा | — — | ३ | ४
१९	१४	ध — $\underline{\text{रें}}$ सां ध प	$\underline{\text{ध}}$ — $\underline{\text{रें}}$ सां $\underline{\text{ध}}$ प
१९	१५	डोलत	डारत
२३	१	ध	$\underline{\text{ध}}$

२३	२	देख	देखो
२४	१९	ध	ध॒
३९	६	होहोहोरी	हरि होरी
३९	१५	संचारी की स्वरलिपि में आभोग के शब्द आ जानेसे उस स्थान पर “हाथ न पिचकाइ लिये” यह पंक्ति के शब्द लगा लिजिये।	
४२	२	ज ब ऽ	ज ब हि
४२	१८	स द न	म द न
४८	३	नि ध प ध	नि ध॒ प ध॒
४८	७	ध नि सां नि ध	ध॒ नि सां नि ध॒
४८	१०	म॑ ध नि	म॑ ध॒ नि
४८	१३	ध सां नि ध	ध॒ सां नि ध॒
४८	१४	मरे	मेरे
४८	१८	ध	ध॒
४८	२२	ध	ध॒
४८	२३	झा —	झा — रू
४९	९	म॑ — | ग ग | म म | ग — | म ग | — म	म॑ — | ग ग | म ग | म॑ ध॒ | नि ध॒ प | म॑ ग
४९	२०	ग रे ग	म रे ग

५१	१	गम गरे सांरे	गं मं गरें सांरें
५१	१	सां रें सां	सां रें सां
५१	३	रें सां निध	रें सां निध
५५	१	निरे गम	निरे गम
५५	१३	निरे गम	निरे गम
५५	१९	सां रें सां सां सां	सां रें सां सां
५६	५	निरे गम	निरे गम
५६	२२	म ध म म –	म ध म म –
५७	५	गम मम	गम म म
५७	१६	गम मम	गम मम
५८	१	नि	नि
५८	५	नि रे नि	नि रें नि
५८	७	म म ग	म म ग
५८	१०	सां निसा	सा निसा
६०	७	निरे	निरे
६१	१	सा – – सारे	सां – – सांरें
६१	१	म ध	म ध

६१	६	मध	म॑ध
६१	१०	मध	म॑ध
६३	१	सां रे नि̱ध̱	सां रें नि̱ध̱
६५	१२	नारी	गोरी
६९	९	नि	नि̱
७३	२०	सां	सा
७९	११	म॑	म॑
८०	१०	सां – सां	सा – सां
८१	९	साध – म॑ – ध	साध़ – म़॑ – ध़
८१	१७	म॑	म॑
८१	१९	सां – सां	सा – सां
८४	७,९	ध – नि सा	ध़ – नि़ सा
८८	१४	नि̱सां	निसां
१२६	१५	गम	गप
१३८	१५	ध	ध̱
१४१	१	नि	नि̱
१५४	५	—३	×
१५४	६	म	म॑
१५४	१२	रे	रे̱

१५५	१	ध	ध
१५५	७	मंग	मग
१५७	९	रें	रें
१५७	१९	ग	ग
१६९	५	रे	रें
१६९	१३	निप	निप
१७३	५	निप	निप
१७४	१५	नि — — प	नि — — प
१७५	११	सा—	सां—
१७५	१३	रे— सां—	रे— सा—
१८२	७	सांनि	सानि
१८३	९	नि — प	नि — प
१८७	५	ब	प
१९८	३	पब	पप
१९८	७	ब	प
२००	१४	मप	मप

२०९	१८	ध	ध॒
२२३	६	सा सां	सां सां
२२५	१५	रे	रें
२३१	९	म म म रे रे	मं मं मं रें रें
२३६	७	ध नि़ प	ध नि॒ प
२३७	१९	आसावयी	आसावरी
२३८	९	ध	ध॒
२३८	१९	ध	ध॒
२४६	१	रे॒ नि	रें॒ नि
२४६	२०	नि रे॒ ग	नि़ रे॒ ग
२४७	३	म॑ ध	म॑ ध॒
२४८	९	रें	रें॒
२४९	९	म	मं॑
२५०	१	रे	रे॒
२५०	५	कुछ	कछु
२५०	२२	म॑ ध॒ म॑ ध॒	म॑ म॑ ध॒ म॑ ध॒
२५१	२	ककु	कछु

२५१	५	रें,	रें,
२५१	५	रे ग	रे ग
२५१	९	म ग – ग	म ग ग ग
२५१	१०	कच – क	क — चक
२५५		अन्तराकी पहली आवृत्ति	

प प प ध प | म म प | नि नि नि | सां – सां –

क न क खं भ | म र – | क त म | नि – हो –

२५६	४	चाका	चोकी
२५९	५	म	म
२५९	१८	रें	रें
२६०	७	रें	रें
२६४	१९	रें	रें
२६६	१६	रें	रें
२६८	५	रें	रें
२६८	१७	म ध	म ध
२७२	१७	रें	रें
२७२	१९	ध	ध

२७३	३	सा	सां
२७३	१३	ते	ग
२७४	१७	म — — ध	म — — ध
२७८	२२	रे ग	रें गं
२८०	१	नि सा	ऩि सा
२८१	११	सां रे नि	सां रें नि
२८७	९,१९	रे	रें
२९३	१३	धि	ध
२९४	१८	सा	सां
२९६	९	सा	सां
३००	२१	म	म
३०६	३	म	म
३०९	९	नि ध	नि ध
३११	१९	नि	नि
३१३	२४	रे – सा –	रे — सा
३१४	३	– नि	नि –
३१४	४	– झु	झु –
३१४	११	सां — –	गं रें सां
३१४	१३	सारे — ग — रे	सांरें — गं — रें
३२२	१४	प मप ध	प म प ध

३२२	१७	र, —	र, क
३२२	२०	प ध सां रें	ध नि सां रें
३२३	७	म ध	$\underset{\smile}{\overset{\mid}{\text{म}}\text{ध}}$
३२३	११	$\underset{\smile}{\text{प म}}$	$\underset{\smile}{\text{प }\overset{\mid}{\text{म}}}$
३२७	१	सां	सा
३२८	१९	र	रे
३३३	१५	$\underline{\text{रे}}$	रे
३३४	१	$\underline{\text{रे}}$	रे
३३६	३	नि	$\underline{\text{नि}}$
३३८	१	$\underline{\text{रें}}$	रें
३३९	९	ग रे	$\underline{\text{ग}}$ रे
३३९	११	ग ग	$\underline{\text{ग}}$ $\underline{\text{ग}}$
३३९	१५	गं	$\underline{\text{गं}}$
३४५	९	रे	रें
३४६	१०	रे $\underset{\smile}{\text{गरे}}$	रे $\underset{\smile}{\underline{\text{ग}}\text{ रे}}$
३४६	१२	प	$\underset{\cdot}{\text{प}}$
३४६	१४	म – रे	$\underset{\cdot}{\text{म}}$ – रे
३४६	१६	नि $\underset{\smile}{\text{धप}}$	$\underline{\text{नि}}$ $\underset{\smile}{\text{धप}}$

३४६	१६	गरे ग	रेग रे
३४७	५	ग रे ग	रे ग रे
३४७	१३	प	प़
३४७	१५	गरे ग	रेग रे
३५१	९	सां	सा
३५२	१	मं	मं
३५६	१७	धर्यां	धर्यों
३५७	५	नि – सां	नि – सां
३५७	१५	गं – –	गं – मं
३५७	१७	ध नि प	ध नि प
३६१	२०	ग म रे सा नि सा	गं मं रें सां नि सां
३६२	७	नि – सा	नि – सां
३६२	१३	नि ध नि	नि ध नि
३६३	९	नि़ ध़	नि़ ध़
३६३	२०	सा, नि	सा, नि़
३७०	९	नि सा	नि़ सा
३७१	१	रे नि सा रे	रे नि़ सा रे

३७३	१५	$\underset{\smile}{\text{म रे}}$ सां	$\underset{\smile}{\text{म रे}}$ सा
३७७	१	ग ग	$\underline{\text{ग}}$ $\underline{\text{ग}}$
३७७	१०	जप	ज न
३७७	११	गं गं	$\underline{\text{गं गं}}$
३७७	१४	रे	रें
३७८	३	गग	$\underline{\text{ग}}$ $\underline{\text{ग}}$
३७८	५	नि सा	नि़ सा
३७८	११	$\underline{\text{ध}}$	ध
३७८	१३	गं गं गं	$\underline{\text{गं}}$ $\underline{\text{गं गं}}$
३७९	१	बडाना	अडाना
३७९	१४	ग ग	$\underline{\text{ग}}$ $\underline{\text{ग}}$
३७९	१६	ग ग	$\underline{\text{ग}}$ $\underline{\text{ग}}$
३८०	७	गं गं	$\underline{\text{गं}}$ $\underline{\text{गं}}$
३८१	५	ग ग	$\underline{\text{ग}}$ $\underline{\text{ग}}$
३८१	१७	गं गं	$\underline{\text{गं}}$ $\underline{\text{गं}}$
३८२	११	ग ग	$\underline{\text{ग}}$ $\underline{\text{ग}}$
३८२	९	नि — प	$\underline{\text{नि}}$ — प

३८२	११	नि प	न̲ि̲ प
३८३	१	गं गं	ग̲ं̲ ग̲ं̲
३८३	९	गं गं	ग̲ं̲ ग̲ं̲
३८४	११	ग	ग̲ं̲
३८९	११	प ध	प़ ध़
३९३	१७	ध नि प	ध न̲ि̲ प
४०९	१३	स्वखान	स्वरज्ञान
४०९	१६	भारखंडे	भातखंडे
४१५	१	रें सां	र̲ें̲ सां
४१५	१	ध सा	ध सां
४१५	१७	नि सा	नि सां
४१६	११	रें	र̲े̲
४२३	२३	नि रें –	नि र̲ें̲ –
४२४	८	नि रें सां –	नि रें सां –
४३०	१७	र̲ें̲ सा	रें सां
४४६	१	अनु. पृ. ४१४	अनु. पृ. ३१४
४४६	२०	सां –	सा –
४४६	२४	नि–नि – सा – नि	नि़–नि़-सा–नि़

परिशिष्ट–९

पखवाज : (मृदंग) ताल परिचय (सामान्य)

(अ) ठेका–बोल परिचय

पुष्टि मार्गीय कीर्तन परंपरा में पखवाज (मृदंग) की प्राचीनता के बारे में प्रथम भाग के 'तालाध्याय' में विस्तार के साथ कहा गया है। प्राथमिक शिक्षा के कई जिज्ञासु अभ्यासियों के द्वारा पखवाज (मृदंग) के कुछ तालों का समावेश हिन्दी ग्रंथ के आगामी भाग में करने के संबंध में सूचन मिले थे। इस सूचन की उपयोगिता को लक्ष्य में रखकर प्रचार में प्रचलित पखवाज (मृदंग) के कुछ आवश्यक ताल, उनके बोलों की व्यावहारिक समझ के साथ, बोल, ठेका सहित दिये जा रहे हैं।

पखवाज के तालोंकी सामान्य समझ

जिस प्रकार संगीत में मुख्य सात स्वर माने जाते हैं उसी प्रकार पखवाज के ठेका–बोल के मूल पाठाक्षर भी सात माने जाते हैं। और बाकी के शेष नौ पाठाक्षर सहायक या प्रतिनिधि माने जाते हैं। इस प्रकार कुल सोलह पाठाक्षर निम्न प्रकार बजाये जाते हैं :

१ ता. : मृदंग की दाहिनी पूड़ी पर बजता हुआ यह खुला बोल है। दाहिने भाग में आधी स्याही से कुछ ऊपर के भाग में सभी उंगलियाँ सीधी साथ मिलाकर पंजा बजाना चाहिये और बजते ही शीघ्र पंजा हटा लेना चाहिये। इसे 'थाप' या 'थप्पी' कहते हैं।

२ दीं : यह भी पखवाज की दाहिनी पूड़ी पर बजता हुआ खुला बोल है। सभी उंगलियाँ मिलाकर पंजा सीधा कर के पंजे के अगले हिस्से से चाट पर हलका आघात करना चाहिये और बजते ही पंजा हटा लेना चाहिये।

३ ना : यह भी खुला बोल है और पखवाजकी दाहिनी पूड़ी पर बजाया जाता है। दाहिने भाग में चाट के स्थान पर तर्जनी उंगली से आघात देने से यह बोल बजता है।

४ तिं : यह मृदंग की दाहिनी पूड़ी पर बजता हुआ बंध प्रकार का बोल है। पंजे की मध्यमा और अनामिका दो उंगलियाँ मिलाकर स्याही के मध्य भाग में दबाकर बजाने से यह बोल बजता है।

५ ट : 'तिं' की तरह यह भी बंध प्रकार का बोल है। मृदंग की दाहिनी पूडी पर बजाने से यह बोल निकलता है। स्याही के मध्य भाग पर दाँयें हाथ की तर्जनी उंगली दबाकर बजाने से 'ट' की ध्वनि उठती है।

६ ध : यह खुले प्रकार का मृदंग के बाँयें भाग में बजता हुआ बाल है। जैसे दाँयें भाग में 'दीं' बजता है उसी प्रकार बाँयें भाग में बजाने से 'ध' बजता है।

७ क : मृदंग के बाँयें भागमें बजते वाला यह बंध प्रकार का बोल हैं। पूड़ी के नीचे के हिस्से में आटे का मध्यभाग छोड़कर बायें हाथ की चार उंगलियाँ मिलाकर दबाकर बजाने से यह बोल बजता हैं।

ऊपर के सात मूल पाठाक्षरों के अतिरिक्त उनके सहायक या प्रतिनिधि पाठाक्षर भी हैं जो उनके मूल बोलों के समान बजाये जाते हैं। जैसे,

१ गा, क, का, तां, डां, लां : ये अक्षर 'ता' के प्रतिनिधि हैं और जैसे 'ता' बजाया जाता है वैसे ही ये सभी बोल बजाये जाते हैं।

२ दिं, तिं, म, थुं : ये चार मूल अक्षर 'दीं' के प्रतिनिधि हैं क्योंकि जिस प्रकार और जिस स्थान से 'दीं' बजता हैं उसी भांति ये सभी बजाये जाते हैं।

३ रा. : यह 'ना' का प्रतिनिधि हैं और उसी भांति बजता है।

४. कि, त, ड, क, तत्, दित् – ये अक्षर 'ति' के प्रतिनिधि हैं और ज्यादातर जैसे दाहिने से बंध 'ति' निकलती है जैसे ही ये बोल बजते हैं।

५. र, :रि, त : ये 'ट' के प्रतिनिधि हैं और 'ट' के समान ही बजाये जाते हैं।

६. ग, गे, गि, घ, घे,, घुं, दिं, घि, घा – ये सभी बोल मूल अक्षर 'ध' के प्रतिनिधि हैं और उसी प्रकार बाँयीं ओर खुले से बजते हैं।

७. का, कत् कि, तक्– ये सभी मूल अक्षर 'क' के प्रतिनिधि हैं और उसीके समान ही बजाये जाते हैं।

मृदंगकी दाहिनी ओर बाँयी पूड़ी पर साथ में बजाने से निकल ते कुछ बोल निम्न प्रकार हैं।

धा : दायें से 'ता' और बाँयें से 'घ', दोनों एक साथ बजाने से यह बोल बजता है।

धीं : दादें से 'दीं' और बाँयें से 'घ' दोनों को एक साथ बजाने से यह बोल बजता है।

घेट, घि : दाहिने पर 'ति' और बाँये पर 'घ' को एक साथ बजाने से यह बोल बजता है।

घे : दाहिने पर 'ट' और बाँयें से 'ध' दोनों को एक साथ बजाने से 'घे' बजता है।

कति या कड – यह संयुक्त अक्षर बाँयें हाथ से 'क' और दाहिने हाथ से 'ड' इनदोनों को कुछ आगे–पीछे बजाने से 'कति' या 'कड' ध्वनित होता है।

उपर्युक्त पाठाक्षरों के अलावा 'त्र' बोल दाहिनी पूडी पर बजाया जाता हुआ संयुक्त अक्षर है। स्याही के बीच भाग में अनामिका, मध्यमा

और तर्जनी उंगलियों को क्रमसे अर्थात् एक के बाद एक शीघ्रता से बजाने से 'त्र' बजता है ।

'त्रक' बजाने के लिए 'त्र' के अलावा उसका 'क' 'त्र' के बाद अनामिका और मध्यमा मिलाकर 'ति' की तरह शीघ्रता से बजाना चाहिये ।

(ब) पखवाज (मृदंग) के ताल बोल

यहां पखवाज (मृदंग) के कुछ आवश्यक तालों का बोल सहित परिचय दिया गया है ।

प्रत्येक ताल की मात्राएँ अंकों– १, २, ३, ४, ५, ६ में बतायी गयी हैं जब कि ताल के लिए ताल चिन्हों का प्रयोग किया गया है जैसे सम के लिए '×' खाली के लिए "०" तथा सम के अतिरिक्त ताल '२, ३, ४' अंकों के द्वारा बताये गये हैं और मात्रा तथा ताल चिन्ह के नीचे 'बोल' दिये गये हैं । सभी तालों के लिए यह समान पद्धति है ।

जहां मृदंग के एक से अधिक बोल हैं वहां मृ – १, २ बताया गया है । उसी प्रकार 'तोड़ा' के लिए – 'तो – १, २' 'महोरा' के लिए – 'म. १, २ तथा 'परन' के लिए प. १, २, ३, लिखे गये हैं ।

१. ताल : अर्ध आड़ा चौताल, मात्रा–७

	१	२	३	४	५	६	७
	×	२		३		४	
	कत्	धीत	धा	कत्	तीत	तीत	ता
परन	धा–कीट	तकीटत	का–कीट	धुमकीट	तकधुम	कीटतक	गदिगन

२. ताल—त्रिताल मात्रा-८

	१	२	३	४	५	६	७	८
	×				०			
मु-१	धा	धी	ट	ता	कीट	धा	कधा	—क
२	धा	धी	ट	धा	कीट	धा	कीटतक	गदिगन
३	धा	धीट	धीट	ता	कीट	धा	गदि	गन
तो-१	कीटतक	गदिगन	धाधा	कोटतक	गदिगन	धाधा	कीटतक	गदिगन
२	धा—कीट	धीधीकीट	धा	धा—कीट	धीधीकीट	धा	धा—कीट	धीधीकीट

३. ताल : चर्चरी (झपताल अंग)–मात्रा–१०

	१	२	३	४	५
	×		२		
मृ.	धा	–	धा	ग	की
तो. १	धा	–	कीटतक	गदिगन	धा
म. १	धा	कीट	तक	गदि	गन
२	धागे	तीट	कत	गदि	गन
प. १	धा–तीर	कीटतक	ता–तीर	कीटतक	ता–तीर

६	७	८	९	१०
०		३		
ट	त्रक	ध	की	ट
कीटतक	गदिगन	धा	कीटतक	गदिगन
ता	कीट	तक	गदि	गन
तागे	तीट	कत	गदि	गन
कीटतक	धा–तीर	कीटधागे	तीटकत	गदिगन

४. ताल : चचँरी प्राचीन : मात्रा : १०

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
×			२		०		३		
धा	गे	न	धी	कीट	ता	धीट	धा	गदि	गन

५ : ताल : मुल ताल : मात्रा : १०

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
	×		०		२		३		०	
मृ. १	धा	धा	दीं	ता	कीट	धा	तीट	कता	गदि	गन
प. १	धागेकीट	तागेकीट	तकींटत	का–कीट	तकतक	धुमकीट	तकधुम	कीटधुम	कीटतक	गदिगन

६ : ताल : द्रुवपद (चौताल) = मात्रा–१२

	१	२	३	४	५	६
	×		०		२	
मु-१	धा	धा	दीं	ता	कीट	धा
२	धा	धीन	नक	तक	धीन	नक
तो-१	धा	धा	दीं	ता	कीटतक	गदिगन
२	धा	तद्धा	कीटतक	गदिगन	धा	तद्धा
प.१	कडां	धीत्तां	धीद्धी	ताघेघे	तीटकत	गदिगन
२	धागेकीट	धागेकीट	तागेकीट	तागेकीट	कीटधीत्त	गदिगन
३	धातीर	कीटधा	तीटकीट	धा	धातीर	कीटनक

७	८	९	१०	११	१२
०		३		४	
दीं	ता	कीट	तक	गदि	गन
धीन	नक	तीरकीट	धाकी	टधा	–न
धाधा	टीटतक	गदिगन	धाधा	कीटतक	गदिगन
कीटकत	गदिगन	धा	तद्धा	कीटतक	गदिगन
धाघेघे	तटकत	गदिगन	ध–घेघे	तीटकन	गदिगन
नागेतीट	धागेतीट	कतीटत	गेनधा	कीटधा	नधा–न
तातीर	कीटनक	तातीर	कीटधा	तीटकदि	गदिगन

७. ताल : त्रिताल — मात्रा–१६

×				२				०				३			
१	२	३	४	५	६	६	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
धा	धी	ट	धा	गे	धी	ट	धा	क	ती	ट	ता	तीट	कत	गदि	गन
धा	धेटे	धेटे	धा	धा	धेटे	धेटे	धा	कत्	तेटे	तेटे	ता	कीट	तग	गदि	गन

८. ताल : चलती – मात्रा–४

धीट	धीतां	—ग	धा	धीट	धीतां	—ग	धा
धीट	धीतां	—ग	धा	कीट	तक	गदि	गन

९. ताल : आड चौताल मात्रा–१४

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
	×		२		०		३				४			
मृ.	धा	की	ट	धा	दीं	ता	धीं	धीं	धा	धा	कीट	तक	गदि	गन
	धा	त्रक	धा	गे	दीं	ता	कत्	धा	दीं	ता	कीट	तक	गदि	गन
म. १	धाकी	टत	गीन	धर	ता	धा	बीटतक	गदिगन	धा	कीटतक	गदिगन	धा	कीटतक	गदिगन

१०. ताल : धमार : मात्रा—१४

× १	२	३	४	५	२ ६	७	० ८	९	१०	३ ११	१२	१३	१४
क	धी	ट	धी	ट	धा	–	क	ती	ट	ती	ट	ता	–
कीट	तक	गदि	गन	धा	कीट	तक	धा	दी	ता	कीट	तक	गदि	गन
घ	धी	ट	धी	ट	धा	–	गदि	गन	धा	धा	कीट	तक	गदि
धा	कीट	धुम	कीट	तक	धी	ता	धाकी	टन	गीन	धाकी	टत	गीन	धाधा
घ	ती	ट	ती	ट	ता	–	कीट	धा	–	कीट	तक	गदि	गन
त	ती	ट	धा	दीत	कीट	तक	गन	धा	धा	कीट	तक	गदि	गन
क	धी	ट	धी	ट	धा	–	क	ती	ट	ती	ट	ता	–

ताल–मर्यादा

यहां एक शंका उपस्थित की जा सकती है कि अष्टछाप महानुभावों ने ब्रह्म, जोग, लक्ष्मी जैसे अधिक (२५ से ऊपर) मात्राओंवाले तालों में कीर्तन-पदें की रचना क्यों नहीं की होगी ? इस विषय में हमारी मान्यता इस प्रकार है ।

संप्रदाय के प्रारंभ से ही 'प्रमेय' और 'प्रमाण' के अनुसार सेवा-क्रमकी प्रणाली चालू रही है । राग और तालों के अष्टसखा संबंध में भी यही मान्यता दिखाई देती है । 'प्रमेय' अर्थात् भावात्मक–दृष्टि से तथा अष्ट समय की सेवा की दृष्टि से प्रधान तालसंख्या ८ है और प्रतिनिधि ताल सहित जो १२ तालों की संख्या होती है उनकी भावना द्वादश निकुंज की मानी जाती है ।

'प्रमाण' अर्थात् 'मर्यादा' या 'व्यवहार' की दृष्टि से देखा जाय तो संगीत के रसास्वाद की अनुभूति के लिए लघु वाक्य–रचना अधिक उपयुक्त मानी जाती है । यह जात साहित्य के आस्वाद के लिए भी सही मानी जाती है क्योंकि वाक्य जितना लंबा होता है, पूर्व अनुसंधान उतना ही कष्टसाध्य बनता जाता है जो रसास्वाद में बाधक होता है । पद–गायन में भाव की दृष्टि से संगीत, शब्द, स्वर, ताल, लय, मात्रा आदि का ध्यान रखा जाना आवश्यक है जो अधिक मात्राओं के तालों में उतना संतुलित नहीं रह पाता और भक्तहृदय का भावपक्ष शिथिल हो जाता है । प्रभु को प्रसन्न करने के लिए ताल और रागों की अधिकाधिक संख्या का होना अनिवार्य माना नहीं जाता था ।

भक्त तो भगवान की भावपूर्ण लीलाओं का गान करने वाले कीर्तनकार ही रहना चाहते थे; उन्हें शास्त्रज्ञ पंडित या गवैया बनने की तनिक भी चाह नहीं थी । और इसी लिए अधिक मात्राओं के तालों को छोड़ कर सामान्य समाज भी आसानी से जिनका लाभ ले सके ऐसे सरल तालों का प्रयोग करना उचित समझा गया है । मध्ययुग के कबीर, तुलसी, मीरां, दादु, नानक आदि सन्त–भक्त कवियों ने भी इसी मार्ग को अपनाया है ।

भा. ३ का

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७	११	रे	रे̲
१९	३	नि	नि̲
२१	११	ध	ध̲
२३	११	रे	रे̲
२९	१३	मं प म	म प म
२९	१७	गं	गं̲
३२	११	ध	ध̲
३२	१६	ध	ध̲
३९	१६	मप नि̲	मप नि
४६	१५	सा	सां
६४	२	होची	होती
६४	११	रें	रें̲
७६	९	गं	गं̲
७७	१७	गम रे सा	ग̲म रे सा
८२	१५	नि	नि़
८९	१७	रे	रे̲
९२	१८	चमक आयो सो	चमक आयो चंद सो
९३	४	अनुभार	अनुसार
९६	१३	सध	सब
९७	१०	एक	इक
९९	२१	फूल्यो	फल्यो
१००	१	ब–ठे	बै–ठे
१००	२०	पृष्ठ मोहन	पृष्ठ ३९ मोहन
१०१	५	बेचन	कंचन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०१	१४	सामत	सामंत
१०१	१५	अनत	अनंत
१०१	२५	जत सो	जत सां
१०२	११	मन बुह्यों	मन जूह्यो
१०२	१२	अनुवार	अनुसार
१०२	२२	—क थरधु	—कं धरधु
१०३	१	नेह	नेंह
१०४	२३	थे	थें
१०५	८	नेन	नेंन
१०५	११	पृष्ठ हरिं	पृष्ठ ७३ हरिं
१०५	२५	सो— —म	सों— —म
१०६	११	की— —लो	पी— —रो
१०६	२२	पर्यां	पर्यों
१०९	१६	सुबह	सुबल
११०	२	पृष्ठ	पृष्ठ ५५
११०	४	उभ	उम
११०	८	झूछे	झूले
१११	८	ई—त	अ—ति
१११	२१	हो—आ	हों—आ
११४	१२	बंटि	जति
११६	६	चूका	चुका
११६	१२	हमोरी	हमारी
११६	२४	चूका	चुका
११७	५	पुष्टिंमार्गीय	पुष्टिमार्गीय
११७	१३	स्वरो	स्वरों
११७	१५	मात्रा को	मात्रा का

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११८	१०	यह्	इन
११८	१३	होती	होता
११८	१४	उसकी	उनकी
११८	१५	चूका	चुका
११९	१	अति द्रुतलय	अति द्रुतलय
११९	२	चूका	चुका
११९	१०	छपे हुए	छपी हुई
१२०	१	ग्रन्थो	ग्रन्थों
१२०	५	चूकी	चुकी
१२०	२	कीर्तनकारों की	कीर्तनकारों के
१२०	१८	पाठन्तरों	पाठान्तरों
१२१	२	में	मैं
१२१	४	मन्दिरौ में	मन्दिरों में
१२१	८	सेवको	सेवकों
१२३	१	तत्कालिन	तत्कालीन
१२३	११	असन्तृष्ट	असन्तुष्ट
१२३	१२	में	मैं
१२३	१३	चूका	चुका
१२३	१५	हाती	होती
१२३	१९	हंमेशां	हमेशा
१२३	२३	शहरो के	शहरों के
१२४	७	प्रणालि बनेंगी	प्रणाली बनेगी
१२४	८	सेधा	सेवा
१२४	९	ज्ञान	ज्ञान
१२४	१५	हैं	है

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२५	२	रागज्ञान	रागज्ञान
१२५	१०	व्यक्तियां	व्यक्ति
१२५	११	वादम	वादन
१२५	२०	तत्पूर्व	तत्पूर्व
१२५	२१	ज्ञान	ज्ञान
१२६	११	दर्शनार्थि	दर्शनार्थी
१२७	३	मी	भी
१२८	२१	उपशन्त	उपरान्त
१३२	९	का	को
१३४	२४	गेद के	गेंद के
१३८	४	खगाज	खमाज
१४०	६	मी	भी
१४३	१४	परपरा	परंपरा
१४४	३	अष्टछापीब	अष्टछापीय
१४८	१७	उटपुटाग	उटपुटांग
१४९	कोलम–२ पं० २१	ड	उ
१६९	१४	शेव	शेष
१७०	११	बाल	बोल
१७१	८	भूल	मूल
१७१	१४	दादें	दायें
		बांयें	बायें
१७२	६	पखचाज	पखवाज

लेखक के अन्य प्रकाशन

(१) संगीतकीर्तनपद्धति अने नित्यकीर्तन	(अप्राप्य)
(२) संगीतकाव्यसुधा	न्यो. रु. ४–५०
(३) संगीतपाठावली	(अप्राप्य)
(४) संगीतसुबोधिनी	न्यो. रु. २०–००
(५) वर्षोत्सव कीर्तनसंग्रह भाग–१	(अप्राप्य)
(६) वर्षोत्सव कीर्तनसंग्रह भाग–२	(अप्राप्य)
(७) बसंत धमारसंग्रह	न्यो. रु. १०–००
(८) संक्षिप्त नियम—श्रीयमुनाजीनां पद घोळ	(अप्राप्य)
(९) प्राचीन घोळ–पदसंग्रह	न्यो. रु. १२–००
(१०) वल्लभाख्यान–मूलपुरुष	(अप्राप्य)
(११) नित्यकीर्तनसुधा	(अप्राप्य)
(१२) नित्यपदसंग्रह	न्यो. रु. ८–००
(१३) हिन्दी घोलपदसंग्रह (संपादक)	(अप्राप्य)
(१४) कीर्तनपद्यावली (संपादक)	(अप्राप्य)
(१५) संक्षिप्त बधाईसंग्रह	न्यो. रु. २–५०
(१६) गुजराती नाटकोनां गीतोनी सरगम (स्वरलिपिकार)	(सस्तु साहित्य प्रकाशन) अप्राप्य
(१७) अष्टछापीय भक्तिसंगीत, उद्भव और विकाख भाग–१ (खण्ड १–२)	न्यो. रु. ५०–००
(१८) अष्टछापीय भक्तिसंगीत, उद्भव और विकास, भाग–२ (खण्ड ३–४)	न्यो. रु. ६०–००
(१९) अष्टछापीय भक्तिसंमीत, उद्भव और विकास भाग–३ (खण्ड–५)	न्यो. रु. ४०–००
(२०) सम्रह पद	(आगामी प्रकाशन)

(अप्राप्य पुस्तकों का आर्थिक सहायता मिलने पर पुनर्मुद्रण किया जायेगा, प्राप्तिस्थान एवं सम्पर्क—श्री चम्पकलालजी छबीलदास नायक ६०, नायकनगर अहमदावाद–३८००१४

इति शुभम्

श्री चम्पकलाल छ. नायक

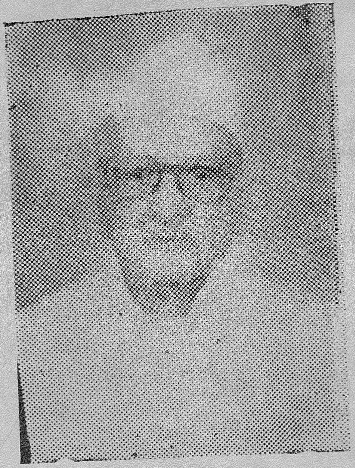

[जन्म दि. १७–४–१९०९]

पाटण (उ. गुजरात) के वतनी आचार्य श्री चम्पकलालजी के पिताजी का शुभ नाम श्री छबिलदास मोरारजी नायक। वे कांकरोली घराने के श्री द्वारकाधीशजी मन्दिर में दो पीढो से कीर्तनकार थे। श्री चम्पकलालजी को बचपन से ही अपने ७ वर्ष से १६ तक की उम्र तक इसका लाभ मिला था।

९ वर्ष की उम्र से उस्ताद पूंजीराम भोजक के पास मृदंग की और १० वें वर्ष में उस्ताद मणिलालजी नायक के पास ख्याल-संगीत की तालीम ली थी। १९४० में बडौदा सरकार की गायनशाला से डिप्लोमा प्राप्त किया तो १९४४ में भातखंडे संगीत युनिवर्सिटी के B. Mus. (प्रथम श्रेणी) बने। इस समय बीच उनका परम भाग्य तो यह था कि संगीतशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित श्री विष्णु भातखंण्डेजी के प्रधान शिष्य पं. वाडीलाल शिवराम नायक के पास १९३७ से लेकर १९४४ तक उत्तर हिन्दुस्तान की संगीतपद्धति का उनको शास्त्रीय ज्ञान सुलभ हुआ और गुजरात के उच्च कोटि के संगीतकारों में उनको स्थान मिला। वे संगीतशिक्षक, आचार्य, परीक्षक आदि कई रूपोंमें कार्य करते रहे किन्तु स्वभावतः वे कीर्तनकार ही रहे। १९४८ में अमदाबाद में पं. भातखण्डे संगीत महाविद्यालय की स्थापना हुई तब से श्री चम्पकलालजी उसके आचार्य बने। वहां से उनके पास तालीम ले कर कितने ही विद्यार्थी भातखंडे संगीत युनि. के "संगीतविशारद" बने। एस. एल. यू. महिला कोलेज में भी ५ वर्ष तक संगीत के प्राध्यापक रहे।

श्री चम्पकलालजी गायक उस्ताद ही और पुष्टिमार्गीय कीर्तनकार ही नहीं अनेक ग्रन्थों के कर्ता भी हैं। अपने २५ वें वर्ष में उनका प्रथम ग्रन्थ 'संगीतकीर्तनपद्धति' एवं यहाँ प्रसिद्ध हो रहा है वह "अष्टछापीय भक्तिसंगीत" (तीसरा भाग) उनका १८ वाँ ग्रन्थ है।

आकाशवाणी—अमदावाद से उनका हवेलीसंगीत का कार्यक्रम वर्षों से चालू है। स्वरांकन-लिपि के वे निष्णात हैं और स्टेनोकी तरह वे गायक के गान का स्वरांकन कर लेते हैं। इनकी शक्तियों का परिचय "अष्टछापीय भक्तिसंगीत" के तीनों ग्रन्थ दे रहे हैं।

—के. का. शास्त्री